मई –2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष – 87 । अंक – 5 । प्रति – ₹ 25 । ₹–300 वार्षिक
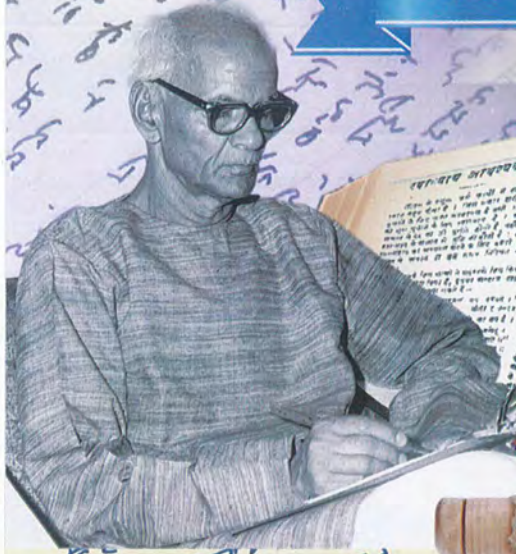
ब्रह्म संध्या

संध्यावंदन की अनेकों विधियाँ हैं। हिंदू धर्म के अंतर्गत अनेकों संप्रदाय हैं और उन संप्रदायों की अपनी–अपनी अलग उपासना विधि हैं। हनुमान चालीसा पाठ से लेकर प्रतिमा पूजन तक और हठ योग से लेकर समाधि स्थापना तक असंख्यों पूजा विधान हैं। इन विधानों की प्रामाणिकता सिद्ध करने वाले प्राचीन अभिवचन पुस्तकों में उपलब्ध हो ही जाते हैं। इस प्रकार नित्यकर्म की संध्या के अनेकों रूप दृष्टिगोचर होते रहते हैं।

जैसे नदियों में गंगा का अपना एक अनोखा स्थान है, पुष्पों में कमल, पक्षियों में हंस, पशुओं में गौ, वनस्पतियों में तुलसी का एक विशेष महत्त्व है, उसी प्रकार संध्याओं में ब्रह्म संध्या की महिमा निराली है। यों तो सभी नदियाँ, सभी पुष्प, सभी पशु, सभी पक्षी, सभी वनस्पति अपने–अपने महत्त्व रखती हैं, परंतु गंगा, कमल, हंस, गौ, तुलसी आदि में कुछ आध्यात्मिक तत्त्व इतनी अधिक मात्रा में हैं कि सतोगुण के आकांक्षियों के लिए इन उपरोक्त वस्तुओं की तुलना में और कोई नहीं जँचती। संध्यावंदन में भी ब्रह्म संध्या की श्रेष्ठता इसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ मानी गई है।

गायत्री मंत्र द्वारा जो संध्या की जाती है, उसे ब्रह्म संध्या कहते हैं। शास्त्रों ने उसके अनुष्ठान को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

– पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
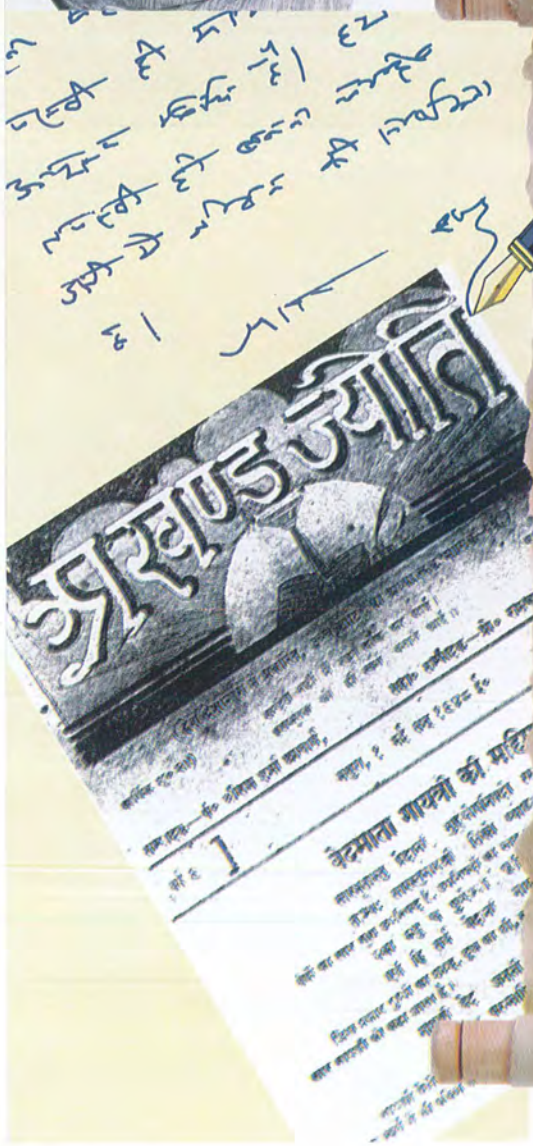
संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449 2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	05
मई	:	2023
वैशाख-ज्येष्ठ	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.04.2023

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

तप-साधना

मानवीय काया इस विराट सृष्टि एवं ब्रह्मांड की ही एक छोटी अनुकृति है। शास्त्र कहते हैं—'सर्व लोकमयं पुमान्' अर्थात इसी मनुष्य शरीर में समस्त लोक छिपे हुए हैं। इसीलिए इस मनुष्य शरीर को देवदुर्लभ, 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' जैसे अंलकारों से विभूषित किया गया है। उस विराट स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर की चेतना इसी मनुष्य शरीर में बीज रूप में सुप्तावस्था में विद्यमान कही गई है।

साधना, स्वाध्याय, संयम व सेवा का पथ अपनाने से वह बीज फूटता, अंकुरित होता, पुष्पित व पल्लवित होता है। यही तप-साधना की प्रक्रिया है, जो नर को नारायण में बदलती है। कोयला—हीरे में, औषधि—रसायन में, पारा—मकरध्वज में इसी प्रक्रिया से बदल पाते हैं। मानवीय व्यक्तित्व को तपाने से इसी जीवन में देवत्व का जागरण संभव है।

जीवात्मा, परमात्मा का ही अंश है। संकीर्णता के भवबंधन त्याग देने पर वह ईश्वरीय विभूतियाँ प्राप्त करने का अधिकारी भी बन जाता है। आवश्यक है कि हम इस शरीर को तपश्चर्या से तपाएँ और अपनी चेतना को परमात्मा को समर्पित करें, ताकि इनसान को देवता, नर को नारायण, क्षुद्र को महान बनने का अवसर मिल सके। यही साधना का प्रत्यक्ष चमत्कार है। ❒

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

सर्वसमर्थ महाशक्ति गायत्री

मई-जून, 2023 के पर्व-त्योहार

वार	तिथि	पर्व
सोमवार	01 मई	मोहिनी एकादशी
शुक्रवार	05 मई	बुद्ध पूर्णिमा
रविवार	07 मई	टैगोर जयंती/नारद जयंती
सोमवार	15 मई	अपरा एकादशी
शुक्रवार	19 मई	वट सावित्री व्रत
गुरुवार	25 मई	सूर्य षष्ठी
मंगलवार	30 मई	गायत्री जयंती/महाप्रयाण पू०गु०/गंगा दशहरा
बुधवार	31 मई	निर्जला एकादशी
रविवार	04 जून	कबीर जयंती
बुधवार	14 जून	योगिनी एकादशी
मंगलवार	20 जून	रथयात्रा
बुधवार	21 जून	अंतरराष्ट्रीय योग दिवस
शनिवार	24 जून	सूर्य षष्ठी
गुरुवार	29 जून	देवशयनी एकादशी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

भेदभाव की दीवारें टूटें, विश्व एक कुटुंब बने

ईश्वर के लिए उसकी सभी संतानें एक समान हैं। तात्त्विक दृष्टिकोण से सभी इनसान परमात्मा के अंश हैं। इस दृष्टि से मानवमात्र समान हैं। यहाँ कोई जातिगत विभाजन नहीं है। एक जाति है—मानव जाति। आरंभ में भिन्न-भिन्न भू-प्रदेशों की न कोई परिधि थी और न उनकी कोई सीमा रेखा थी। कोई जाति किसी भू-प्रदेश की विशेष स्वामिनी नहीं थी।

ईश्वर की दृष्टि में विविध जातियों में कोई भेदभाव कभी नहीं था। जाति, वंश और संप्रदाय के बीच विभाजन की दीवारें नहीं थीं। फिर मनुष्य में इस प्रकार का संकीर्ण भेदभाव कहाँ से पनपा? पहले कहा जाता था कि अपने देश से प्रेम रखना ही धर्म या विश्वास है, परंतु अब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आधार पर हम कहते हैं कि उस मनुष्य का विशेष महत्त्व नहीं, जो केवल कुछ से प्रेम रखता है, बल्कि महिमा के योग्य वह है, जो सारे संसार से प्रेम रखता है।

ऊपर लिखे शब्दों में एक मानवतावादी संत ने संसार के ऊपर छाए हुए भयंकर संकट और उसको दूर करने का उपाय प्रकट कर दिया है। जिस जाति ने हजारों वर्ष पहले 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का जयघोष किया, जिसने 'चक्रवर्ती' पदवी प्राप्त करके भी किसी राष्ट्र या जाति को मिटाने का दुराग्रह नहीं किया, जिसने आक्रमणकारी विदेशियों को भी शांति स्थापित हो जाने के बाद अपने में सम्मिलित कर लिया, वह जातीय घृणा की समर्थक कैसे हो सकती थी?

यद्यपि भारतीय संस्कृति को पिछले हजार वर्षों में विदेशी शासन के कारण बहुत से कष्ट सहन करने पड़े, पर उसने अपने इस प्राचीन आदर्श की अवहेलना कभी नहीं की। अब भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारतीय संस्कृति लगातार विश्वशांति एवं सद्भाव स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रही है।

विश्वप्रेम और देशप्रेम में अंतर नहीं है, बल्कि वह प्रेम की व्यापकता है, परंतु कुछ संकीर्ण विचारों के अदूरदर्शी और कट्टरपंथी व्यक्ति इस मानवोचित विचारधारा के महत्त्व को न समझकर सांप्रदायिकता, पृथकतावाद, फूट तथा द्वेष के ही गीत गाते रहते हैं और विश्वशांति के अनुयायियों को कल्पनालोक में विचरण करने वाला अथवा जीवन संग्राम से भयभीत होने वाला बतलाते हैं।

मतभेद का होना स्वाभाविक है और सब लोग एक साथ किसी उच्च आदर्श का पालन करने को तैयार भी नहीं हो सकते, परंतु फिर भी उनके लिए यह जानना अनिवार्य है कि दोनों चिंतनों में बड़ा अंतर नहीं है।

विश्व-समाज में विश्वास रखने का अर्थ यह नहीं कि हम अपने देश की सेवा और हितकामना करने से विमुख हो जाएँ। हमारा देश भी विश्व का एक अंग है, इसलिए यह कैसे संभव है कि हम विश्वसेवा का दावा करते हुए अपने देश की सेवा न करें।

भारतीय संस्कृति में वे सभी तत्त्व निहित हैं, जो विश्वव्यापी समस्याओं के समाधान में सक्षम और समर्थ हो सकते हैं। ऐसी दशा में हमारा सेवा-क्षेत्र प्राय: अपना देश ही रहेगा और हम अपने

निकटवर्ती व्यक्तियों की सेवा करके ही विश्व-सेवा के आदर्श में भागीदार बन सकेंगे।

यह आध्यात्मिक मार्ग की बहुत बड़ी विशेषता है। कर्म के समान होने पर भी उसका परिणाम हमारी मनोवृत्ति के अनुसार अच्छा या बुरा प्राप्त होता है। जब हम अनीति और अत्याचारी के विरुद्ध युद्ध करते हैं, तो प्रकट रूप में दोनों पक्षों के सैनिकों की स्थिति एक जैसी होती है, दोनों ही शस्त्रों का प्रयोग करके एकदूसरे पर प्रहार करते हैं, पर मनोवृत्ति में अंतर होने से एक आततायी और दूसरा बलिदानी कहा जाता है।

इसलिए युग की माँग यही है कि अपने देश के सच्चे सेवक रहते हुए भी हम विश्व मानवता के महत्त्व को भी समझें। हम भारतवासी तो 'भगवद्गीता' के सिद्धांतों के अनुयायी हैं, जिसमें भगवान ने विराट रूप दिखलाकर यह जता दिया है कि यह समस्त संसार वास्तव में एक ही स्रोत से उत्पन्न हुआ है और इसमें भिन्नता, अंतर का भाव रखना सर्वथा मूढ़ता है।

भगवान तो जड़ और चेतन के बीच भी एकता, प्रेमभाव रखने का उपदेश देते हैं और अगर हम मनुष्यमात्र को अपना भ्राता न मानकर विश्व-निर्माण में भाग न लें, उसका समर्थन न करें तो ये कैसे उचित कहा जा सकता है ?

संसार का विभाजन कृत्रिम है—वर्तमान समय में राष्ट्रों का जो विभाजन हम देख रहे हैं, वह कृत्रिम है। सभ्यता और संपत्ति की वृद्धि के साथ दुनिया में अधिकार लिप्सा और विभाजन की प्रवृत्ति बढ़ती गई और लोग अपने अधिकार-क्षेत्र के चारों ओर दीवारें खड़ी करने लगे। उनमें से हरेक की यह अभिलाषा रहती है कि मेरा अधिकार-क्षेत्र दूसरों से बड़ा हो जाए और इसके लिए वह अकारण दूसरों पर आक्रमण और हिंसा की प्रवृत्ति को अपनाता रहता है।

वर्तमान में यही युद्ध का मूल कारण है। आज इसने बहुत विशाल तथा जटिल रूप धारण कर लिया है, जिसके कारण संसार भर में एक अभूतपूर्व हलचल और आतंक का दृश्य दिखलाई पड़ रहा है। इस प्रकार के युद्ध की भयंकरता और अनैतिकता का वर्णन करते हुए विश्व-शांति के एक महान उपासक ने कहा है—

''भूमि किसी एक की नहीं, बल्कि सबकी है। भूमि मनुष्य का घर नहीं, यह तो उसका श्मशान स्थल है। मनुष्य कितना ही महान विजयी क्यों न हो, कितने ही देशों को अपने अधीन क्यों न कर ले, पर वह इन विध्वंस किए भू-प्रदेशों में से किसी एक को भी पूर्ण रूप से अपने अधिकार में नहीं रख सकता है, सिवाय उस छोटे-से टुकड़े के जहाँ पर उसका दाह संस्कार किया जाता है। केवल थोड़े-से व्यक्तियों की वासना की पूर्ति के लिए अनगिनत घर बरबाद किए जाते हैं और हजारों-लाखों स्त्री-पुरुषों के हृदय टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते हैं।''

जब से अणुशक्ति का अस्त्र के रूप में प्रयोग करने का आविष्कार हो गया है, तब से तो यह अवस्था बहुत ही गंभीर हो उठी है। अब तक युद्धों के फलस्वरूप यदि हजारों या लाखों मनुष्यों के मरने की संभावना रहती थी तो अब एक ही घंटे में दस-बीस करोड़ के मरने या पूरे देश के नष्ट हो जाने की कल्पना का किसी भी समय सत्य सिद्ध हो जाना संभव हो गया है। जब से यह खतरा उत्पन्न हुआ है, तब से एक विश्व-राज्य और विश्व-समाज की माँग बहुत जोर पकड़ रही है।

अब समझदार व्यक्ति चाहे वे किसी भी देश और धर्म के क्यों न हों, यह अनुभव करने लगे हैं कि जब विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में इतनी बड़ी शक्ति दे दी है, तब उसका कल्याण इसी में है कि पृथक जातीयता और राष्ट्रीयता के भेदों को मिटाकर

एक संघ-शासन को ही समस्त पृथ्वी की शासन-व्यवस्था सौंप दी जाए अन्यथा यदि किसी युद्धोन्मादी ने सच्चे या झूठे बहाने से आणविक अस्त्रों से आक्रमण आरंभ कर दिया तो पल भर में इस हरी-भरी धरती का अधिकांश हिस्सा श्मशान में परिणत हो जाएगा।

हथियारों की दौड़ और राष्ट्रनायकों के दुराग्रह को देखकर विश्व-बंधुत्व के उपासक वर्षों पहले से ही सब राष्ट्रों के संचालकों से पारस्परिक प्रतिस्पर्धा तथा मतभेद मिटाकर एक विश्व संगठन बनाने का आवाहन करते रहे हैं।

हर प्रगतिशील नागरिक का यही मनोभाव है कि एक ऐसा विश्व विनिर्मित हो, जिसमें न साम्राज्यवाद हो और न पूँजीवाद, न धर्म के संघर्ष हों और न जाति के। सारी दुनिया एक राष्ट्र हो, मनुष्यमात्र की एक जाति हो, नर-नारी का अधिकार और मान समान हो, सत्य ही ईश्वर हो, विवेक ही शास्त्र हो। सारे विश्व का एक कुटुंब हो, एक ही संपदा सब की संपदा हो, कोई गरीब न हो। सभ्य और श्रेष्ठ समाज का निर्माण हो, जिसमें महापुरुष पैदा हों और विश्व को एक नवीन दिशा प्रदान कर सकें।

दुनिया में व्याप्त संकट एवं समस्याओं और उनके कारण होने वाली व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की दुर्दशा को देखकर सभी विचारशील लोगों का ध्यान किसी नए परिवर्तन की तरफ आकर्षित हो रहा है। इस.समय संसार में ज्ञान-विज्ञान में उन्नति करके समृद्धि और संपदा की प्राप्ति हुई है, परंतु सेवा, संवेदना एवं त्याग से समाज की व्यवस्था की जाए तो सभी लोग सुख से जीवन व्यतीत कर सकते हैं और राष्ट्र एवं विश्व में एकता-समता का भाव पनप सकता है। इस प्रकार भेद की दीवार टूटने से वसुधा एक कुटुंब के समान बन सकती है। ❑

राजा ने अपने एक बुद्धिमान मंत्री से प्रश्न किया—"वह कौन-सा मार्ग है, जो मनुष्य को संसार के चक्र से मुक्त कर देता है?" मंत्री ने उत्तर दिया—"महाराज! शास्त्रों में कहा गया है कि 'सत्य स्वर्गस्य सोपानं, पारावारस्य नौरिव'—अर्थात सत्य ही वह आश्रय है, जो मनुष्य को संसार सागर से तारकर स्वर्ग तक पहुँचा देता है। यदि मनुष्यमात्र सत्य का सहारा ले ले तो सत्य वदन में इतनी सामर्थ्य है कि वह मनुष्य को संसाररूपी इस भवसागर से पार करा सकता है। देखने में भले ही सत्य का मार्ग दुष्कर और दुरूह लगे, पर यही एकमात्र मार्ग है, जो मनुष्य को जन्म-जन्मांतरों के कषाय-कल्मषों से मुक्त करता है और साथ ही इस संसारचक्र से मुक्ति का मार्ग सुनिश्चित करता है।"

परमपूज्य गुरुदेव संस्मरण

साधनात्मक जीवन बने आधार

परमपूज्य गुरुदेव की गोष्ठी का क्रम चल रहा था। समीप बैठे सभी कार्यकर्त्ता पूज्य गुरुदेव द्वारा कहे जा रहे प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य को बहुत ध्यान से सुन रहे थे। उनके सामीप्य का प्रभाव ही कुछ ऐसा होता था। जो उनके निकट बैठा करता था, वह स्वत: ही उनके व्यक्तित्व के प्रति एक ऐसे अनूठे आकर्षण को अनुभव करता था, जिसे शब्दों में व्यक्त कर पाना संभव नहीं है। सभी दत्तचित्त, एकनिष्ठ होकर उनके द्वारा कहे जा रहे प्रत्येक शब्द को बहुत ध्यान से सुन रहे थे।

पूज्य गुरुदेव कह रहे थे—"बेटा! हर उस व्यक्ति को जो लोकसेवा के क्षेत्र में प्रवेश करने का इच्छुक है, उसे पहले साधक बनना चाहिए। साधना के बिना व्यक्तित्व का उस स्तर का बन पाना संभव ही नहीं है, जो सेवाकार्य के लिए अभीष्ट होता है।" अपनी बात को थोड़ा और स्पष्ट करते हुए वे बोले—"ऐसा इसलिए; क्योंकि परमात्मा की चेतना मनुष्य में साधनात्मक पुरुषार्थ के माध्यम से ही प्रवाहित होती है। साधना ही वो माध्यम है, जिसके माध्यम से ईश्वर का ऐश्वर्य मानवीय व्यक्तित्व में अभिव्यक्त हो पाता है।"

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये शब्द उस व्यक्तित्व के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहे थे, जिनका स्वयं का जीवन एक स्थितप्रज्ञ, एक महायोगी, एक दुर्द्धर्ष तपस्वी होने का प्रतीक बन गया था। जिस भी पहलू से उनके जीवन की समीक्षा या मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया जाए—पाया यही जाएगा कि बाहरी जीवन की गतिविधियाँ कुछ भी चलती रही हों, उनका आंतरिक जीवन सदा साधना में ही निमग्न रहता था।

उन्होंने अपने जीवन को एक ऐसे साधनात्मक पैमाने पर कस दिया था कि वो सदा एक ही उद्देश्य के प्रति अहर्निश समर्पित जीवन को जीते दिखाई पड़ते थे। अपने गुरु, महाकाल को जब उन्होंने वसंत पंचमी, 1926 को जीवन की बागडोर को सौंप दिया तो फिर गायत्री जयंती, 1990 तक उस एक लक्ष्य, एक उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को जीवन का अंग बनने ही नहीं दिया।

उनके जीवन क्रम में भी यही शिक्षण परिलक्षित होता था। सघन श्रद्धा व संपूर्ण समर्पण का प्रतीक उनका जीवन बन चुका था। जिसके जीवन क्रम में ये भाव संपूर्ण रूप से समाहित हो जाते हैं, उसकी साधना के असफल होने का फिर प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसे व्यक्तित्व फिर सिद्धियों की तलाश में नहीं जाते, वरन सिद्धियाँ, ऐसे साधक के पास पहुँचने को आतुर रहती हैं और वो ही उनसे दूर भागता रहता है। इसीलिए गुरुदेव ने जीवन भर स्वयं भी साधनात्मक जीवन जिया, बल्कि दूसरों को भी वैसा ही जीवन जीने को प्रेरित किया।

उस दिन की गोष्ठी में भी वे इसी राह पर चलने को प्रत्येक कार्यकर्त्ता को प्रेरित कर रहे थे। वे बोले—"बेटा! साधना का आधार एक ही है, वो है—आत्मशोधन। निरंतर स्वयं को अच्छा, बेहतर, पवित्र बनाने की कोशिश।" सभी अपने मन में गहन चिंतन में प्रविष्ट होकर यही सोचने लगे कि उनका कहना कितना सत्य है।

सही पूछें तो साधना का आधार ही यह है, परंतु उस ओर लोगों का ध्यान ही कहाँ जाता है? हर व्यक्ति सिद्धियों की प्राप्ति में साधना का उद्देश्य समझकर बैठ जाता है, जबकि उसका लक्ष्य,

उद्देश्य तो एक ही है कि जीवन आत्मशोधन के मार्ग पर बढ़ सके।

पूज्य गुरुदेव के द्वारा उस समय कहे जा रहे शब्द भी उसी ओर इशारा कर रहे थे। वे बोले—''यह सोचना व्यर्थ है कि छोटी-मोटी पूजा के क्रम को पूरा कर देने मात्र से आत्मकल्याण या ईश्वर प्राप्ति का महती लक्ष्य पूर्ण हो जाता है। पूजा-पाठ तो रेलवे के सिगनल की तरह से होते हैं, जो दिशा- निर्देश भर देते हैं। सही कार्य तो सत्प्रवृत्तियों को अपनाने से और पुण्यकर्मों को करने से होता है।'' हर सुनने वाले के अंतरंग में ये शब्द गुंजायमान हो रहे थे। गुरुदेव साधना की गूढ़ता को कितने सरल शब्दों में समझाते चले जा रहे थे।

सभी ने सोचा कि सही तो है—साधना का उद्देश्य ही आत्मशोधन है और बिना अच्छे कर्मों को करे आत्मशोधन कैसे संभव है? अच्छे कर्मों को करने के लिए व्यक्ति का ध्यान ही नहीं रहता। अशुभ कर्मों को इनसान जीवन भर बटोरता है और विडंबना ये है कि उसके बाद भी इनसान ऐसा सोचता है कि हमें, हमारी तथाकथित साधना का समुचित परिणाम नहीं मिल पा रहा है।

परमपूज्य गुरुदेव आगे कह रहे थे—''साधना का उद्देश्य साधक को शुभ कर्मों को करने की ओर प्रवृत्त कर देना है। स्मरण रखें कि जीवन में जो भी पाप हुए थे, वो भी तो दुष्कर्मों से ही बने थे। कर्म की काट कर्म से ही संभव है। अशुभ, अमंगल का निस्तारण शुभ व कल्याणकारी कर्मों से ही संभव है। इसलिए साधना को प्रायश्चित द्वारा, आत्मशोधन का, आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त करना पड़ता है और वैसा करने के लिए उसी स्तर का साहस दिखाने की जरूरत होती है, जैसी कि दुष्कर्म करते समय, किसी की न सुनने की धृष्टता करते समय की गई थी।''

गुरुदेव ने आगे कहना आरंभ किया और बोले—''साधक का जीवन साहसी का जीवन है। जिसे साधना करनी है, उसे जीवन का त्याग करना ही होता है। जिसे जीवन का मोह होता है, उसे साधना का लाभ मिल ही नहीं पाता।'' वहाँ बैठा हर व्यक्ति सोच रहा था कि वस्तुतः गुरुदेव का स्वयं का जीवन भी वैसा ही तो है। उन्होंने अपने जीवन में भी तो पंद्रह वर्ष की आयु में जो साधना की ज्योति प्रज्वलित की तो वह जीवनपर्यंत निष्कंप, अविराम जलती रही। उसे प्रतिकूलताओं की आँधियाँ कभी विचलित न कर सकीं।

सभी के मन में विचार उमड़ रहे थे कि हम तो समस्त सुविधाओं के होते हुए भी साधना के क्रम को अपनाने में चूक जाते हैं; जबकि पूज्य गुरुदेव ने तो कठिनाइयों के मध्य एक सद्गृहस्थ का जीवन जीते हुए साधना के शिखर को छुआ। इसीलिए वे सदा, हर व्यक्ति को साधना-पथ पर चलने के लिए प्रेरित कर सके। सुनने वाले पूज्य गुरुदेव के शब्दों को सुन रहे थे तो उन्हें गीता (2/61) का एक श्लोक सहज ही स्मरण हो आया—

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

अर्थात साधक को चाहिए कि वह संपूर्ण इंद्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे; क्योंकि जिस पुरुष की इंद्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर हो पाती है। सभी सोच रहे थे कि पूज्य गुरुदेव का जीवन एक ऐसे ही स्थितप्रज्ञ का जीवन है।

उधर पूज्य गुरुदेव अपनी वाणी को विराम देते हुए कह रहे थे—''मनुष्यता का सर्वोच्च सोपान साधना है। हमारा जीवन इसका एक प्रत्यक्ष प्रयोग रहा है। इसी उद्देश्य के लिए हम पल-पल तपे हैं, इंच-इंच बढ़े हैं। इसी साधनात्मक जीवन को तुम लोग भी अपने जीवन का आधार बनाना।'' गोष्ठी समाप्त हो चली थी और वहाँ उपस्थित कार्यकर्त्ता पूज्य गुरुदेव के इन शब्दों को सहेजते हुए वहाँ से विदा हो रहे थे। ❑

बुद्धि से संबोधि तक

बुद्ध को जिस रात संबोधि लगी, समाधि लगी, उस रात छह वर्ष तक अथक परिश्रम करने के बाद उन्होंने सब प्रयास त्याग दिए। छह वर्ष तक उन्होंने बड़ी तपश्चर्या की, बड़ा योग साधा। शरीर को गला डाला, हड्डी-हड्डी रह गए। कहते हैं कि पेट पीठ से लग गया, चमड़ी सूख गई, सारा जीवन रस सूख गया, सिर्फ आँखें रह गई थीं। बुद्ध ने कहा है कि मेरी आँखें ऐसी रह गई थीं, जैसे गरमी के दिनों में किसी गहरे कुएँ में थोड़ा-सा जल रह जाता है। बस, अब गया-तब गया जैसी हालत थी।

उस दिन स्नान करके निरंजना नदी से वे बाहर निकल रहे थे, इतने कमजोर हो गए थे कि निकल न सके। एक वृक्ष की जड़ पकड़कर अपने को रोका, नहीं तो निरंजना उनको बहा ले जाती। उस जड़ से लटके हुए उन्हें ख्याल आया कि यह मैं क्या कर रहा हूँ, यह मैंने शरीर गला लिया, यह सब तरह का योग करके मैंने अपने को नष्ट कर लिया। मेरी हालत यह हो गई है कि यह छोटी-सी क्षीणधारा निरंजना की, यह मैं पार नहीं कर सकता और भवसागर पार करने की सोच रहा हूँ।

इससे उन्हें बड़ा बोध हुआ। बिजली कौंध गई। उन्होंने सोचा यह मैंने क्या कर लिया। यह तो आत्मघात की प्रक्रिया हो गई। मैं निरंजना नदी पार करने मैं असमर्थ हो गया, तो यह भवसागर मैं कैसे पार करूँगा ? उस साँझ उन्होंने सब छोड़ दिया। घर तो पहले ही छोड़ चुके थे, संसार पहले ही छोड़ चुके थे, राज-पाट सब पहले ही छोड़ चुके थे— उस संध्या उन्होंने मोह, योग सब छोड़ दिया। भोग पहले छूट गया था। उनके पाँच शिष्य थे, वे पाँचों भी उनको छोड़कर चले गए थे।

उन्हीं दिनों सुजाता ने मान्यता रखी थी कि पूर्णिमा की रात को एक वृक्ष पर, जहाँ वह सोचती थी कि देवता का वास है—खीर चढ़ाएगी। जब वह वहाँ पहुँची तो उसने बुद्ध को वहाँ बैठे देखा। उसने तो समझा कि वृक्ष का देवता प्रकट हुआ है। उसने खीर बुद्ध को चढ़ा दी। उसने स्वयं को सौभाग्यशाली समझा।

उसने समझा कि उसने वृक्ष के देवता को खीर चढ़ाई, लेकिन बुद्ध तो सब त्याग कर चुके थे तो उन्होंने खीर स्वीकार कर ली। कोई और दिन होता तो वे स्वीकार भी न करते। उस रात वे बड़े निश्चिंत सोए। बुद्ध पहली बार निश्चिंत सोए। न संसार बचा न मोक्ष बचा। कुछ पाना ही नहीं था तो अब चिंता कैसी थी। चिंता तो पाने से पैदा होती है। जब पाना हो तो चिंता पैदा होती है। उस रात कोई चिंता नहीं रही। मोक्ष की भी चिंता नहीं रही। वह बात ही उन्होंने छोड़ दी।

बुद्ध ने कहा, यह सब व्यर्थ है। न यहाँ कुछ पाने को है, न वहाँ कुछ पाने को है। पाने को कुछ है ही नहीं। मैं नाहक ही दौड़ में परेशान हो रहा हूँ। अब मैं चुपचाप सारी यात्राएँ छोड़ देता हूँ। वे निश्चिंत सोए। उस रात उन्होंने अपने जीवन को जीवन की धारा के साथ समर्पित कर दिया। धारा के साथ बहे, जैसे कोई आदमी तैरे न और नदी में हाथ-पैर छोड़ दे और नदी बहा ले चले। खूब गहरी नींद उन्हें आई।

सुबह आँख खुली तो उन्होंने पाया कि वे समाधिस्थ हो गए। रात सुजाता जो मिट्टी के

पात्र में खीर छोड़ गई थी, वह पात्र पड़ा था। बुद्ध ने वह पात्र उठाया। वह निरंजना में गए नदी के किनारे।

उन्होंने कहा—''मुझे लगता है कि समाधि फलित हो गई है, पहली बार मुझे ज्ञान हुआ है, मैं अपूर्व ज्योति से भरा हूँ, मेरे सब दु:ख मिट गए, मुझे कोई चिंता नहीं रही, मुझे कोई तनाव नहीं रहा, मैं ही नहीं रहा, मैं समाप्त हो गया हूँ, मुझे तो पक्का अनुभव हो रहा है कि मैंने पा लिया, जो पाने योग्य है मिल गया।

उन्होंने सोचा कि यह करोड़ों-करोड़ों वर्षों में मिलने वाली समाधि मुझे मिल गई, मगर मैं प्रमाण चाहता हूँ। मैं अस्तित्व से सबूत चाहता हूँ कि ऐसा मुझे लग रहा है कि मिल गई, लेकिन प्रमाण क्या है ? यह जानने के लिए उन्होंने वह पात्र निरंजना में छोड़ा और कहा कि यह पात्र अगर नीचे की तरफ न जाकर नदी में ऊपर की तरफ बहने लगे, तो मैं मान लूँगा कि मुझे संबोधि हो गई।

बुद्ध ने देखा और नदी के किनारे जो मछुए मछली मार रहे थे, उन्होंने भी चौंककर देखा कि वह पात्र नदी के ऊपर की तरफ बहने लगा। तेजी से बहने लगा और जल्दी ही आँखों से ओझल हो गया। यह कहानी बड़ी प्रतीकात्मक है और बड़ी अर्थपूर्ण है। उस रात बुद्ध ने अपने को छोड़ दिया, नदी की धारा में बहने को।

जब पूरा छोड़ दिया, नदी की धारा में बहने को तो दूसरे दिन नदी ने भी प्रमाण दिया कि अब तुम ऊपर की धारा में भी जा सकते हो। तुम तो क्या, तुम्हारे हाथ से छोड़ा हुआ पात्र भी ऊर्ध्वगामी हो जाएगा।

यह अध्यात्म है। यह अध्यात्म का मूल आधार है। यदि हम उतर जाएँ संसार में, पूरे भाव से, समग्र भाव से, सब छोड़कर झगड़ा नहीं, झंझट नहीं, कलह नहीं, सिर्फ होश रखते हुए जीवन् में उतर जाएँ तो अचानक हम एक दिन पाएँगे कि हमने तो नीचे जाने के लिए समर्पण किया था, परंतु हम ऊपर जाने लगे। तब हमारे हाथ के छोड़े हुए पात्र भी जीवन की धारा में ऊपर की तरफ यात्रा करने लगेंगे।

बुद्ध की यह कथा अत्यंत प्रेरणास्पद है। जीवन की धारा प्रकृतिगत है और प्राकृतिक ढंग से ही हमें इसमें बहते चले जाना चाहिए। जीवन की यह धारा कर्म की धारा है। कर्म हमें बहाता है। सत्कर्म जीवन की दिशा को अपने लक्ष्य तक ले जाता है। जीवन देवता के महान उपदेशक बुद्ध का संदेश है कि हमें सत्कर्म करते हुए आगे बढ़ना चाहिए। ❑

एक ज्ञानी व्यक्ति से किसी ने प्रश्न किया—''मनुष्य के जीवन में तनाव का क्या कारण है ?'' ज्ञानी ने उत्तर दिया—''मित्र! मनुष्य की भावनाओं का दमन उसे कुंठित कर देता है। भावनाओं के शोषण से मनुष्य अपने को निस्सहाय अनुभव करता है और इस प्रकार की संकीर्णता मनुष्य को भावनात्मक रूप से आहत कर देती है और वही उसके जीवन में तनाव का कारण बन जाती है। इसीलिए भावनाओं का संरक्षण और पोषण ही जीवन में सुखी रहने का एकमात्र उपाय है।''

मन प्रत्यक्ष देवता है, कल्पवृक्ष है, जिसका सदुपयोग करना सीख लिया जाए तो व्यक्ति मनचाहा फल प्राप्त कर सकता है, लेकिन यदि मन साथ न दे, बिगड़ जाए या इसका दुरुपयोग होने लगे तो यही मन एक बड़ा सरदरद बन जाता है, दुश्मन की तरह व्यवहार करने लगता है और बरबादी का कारण बनता है।

अत: सबसे पहले ध्यान देने योग्य यह मन ही है और यह हमारी सेवा का पहला हकदार है; क्योंकि यदि मन ठीक है, तो शेष सबका ठीक होना सुनिश्चित हो जाता है और यदि मन साथ नहीं दे, तो व्यक्ति जीती हुई बाजी भी हार जाता है और बिगड़ैल मन व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु बन जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इसीलिए कहा है कि सधा हुआ मन मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र है और बिगड़ा हुआ मन सबसे बड़ा शत्रु।

देखा जाए तो सधा हुआ मन अलौकिक सिद्धि से कम नहीं और यदि हम बिगड़ैल मन को समझा सकें कि आज वह जिस घटिया व बिगड़ैल स्थिति में पड़ा हुआ है, इससे इस जीवन का महान उद्देश्य पूरा होने वाला नहीं, उसे इससे उबरना होगा, तो निश्चित रूप से सकारात्मक परिवर्तन की ओर कदम बढ़ेंगे और जीवन में सुख-शांति का प्रादुर्भाव होगा। ऐसे कार्य बन पड़ेंगे कि अपना मान और महत्त्व सर्वसाधारण की दृष्टि में दिन-रात बढ़ता चलेगा और आत्मसंतोष, जनसहयोग तथा दैवी अनुग्रह के चमत्कार पग-पग पर दृष्टिगोचर होने लगेंगे।

विडंबना यह है कि मनुष्य अपने मन पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय दूसरी चीजों में रुचि लेता है, भोग-विलास की वस्तुओं में लिप्त रहता है और स्वयं के बजाय दूसरों को समझाने-सुधारने का ठेका लिए रहता है।

ऐसे में जो मन चौबीसों घंटे उसके पास रहता है, उसकी सुध लेने की ही फुर्सत नहीं रहती। जबकि मन ही व्यक्ति के उत्थान-पतन का केंद्र है, उसकी सृजनशक्ति की धुरी है। अपनी विशेषताओं के कारण मन पृथ्वी पर प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष, कामधेनु व देवता है।

मन की अद्भुत शक्तियों में प्रमुख हैं— कल्पनाशक्ति, मनोबल एवं इच्छाशक्ति, जिनके बल पर उसके लिए असंभव जैसी कुछ भी चीज नहीं रह जाती, बस, ठान लेने भर की देर होती है। इसके अभाव में कुंभकरण की तरह पड़ा-पड़ा व्यक्ति जीवन के बहुमूल्य पलों को यों ही बरबाद करता रहता है और यदि मन की शक्तियाँ विषयभोग व राग-द्वेष में उलझ जाएँ, तो उसके जीवन को और दु:खमय व संतापग्रस्त बना देती हैं।

हाड़-मांस की ठठरी में छिपा मनरूपी प्रचंड बेताल गिरने पर पाशविक-पैशाचिक कृत्यों में संलिप्त हो जाता है और व्यक्ति के सामने पतन-पराभव से लेकर आत्मिक ध्वंस की स्थितियाँ खड़ी कर देता है। इसके विपरीत यही मन ईश्वरत्व की ओर अभिमुख हो जाए तो यही मन देवत्व के मार्ग पर बढ़ते हुए स्वर्ग जैसे नंदनवन की रचना कर देता है

और यह प्रत्यक्ष देवता की भूमिका में सक्रिय हो जाता है।

अन्य देवी-देवता पूजा-पाठ का पूरा फल देंगे या नहीं, कह नहीं सकते, लेकिन सधा हुआ मन तो प्रत्यक्ष फलदायी देवता है। इसकी आराधना कभी निष्फल नहीं जाती। यहाँ बोओ-काटो का सिद्धांत अक्षरश: लागू होता है। मन की सेवा के सत्परिणाम इस लोक ही नहीं, परलोक में भी मिलते हैं।

संसार में महापुरुषों की जीवनियों पर सूक्ष्म दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि अधिकांशत: उनकी परिस्थिति, साधन व योग्यता आदि सब औसत स्तर के थे, लेकिन उनमें एक ही विशेषता थी—उनका प्रचंड मनोबल। उन्होंने मन की शक्ति को पहचाना व इसी आधार पर महान कार्य किए, जिन्हें सर्वसाधारण चमत्कारिक मानकर दाँतों तले उँगली दबाने के लिए विवश होते हैं व उन्हें अनुकरणीय आदर्श मानते हैं।

इसके विपरीत जिन्होंने उच्चस्तर की प्रतिभा, साधन व अनुकूल परिस्थितियाँ होते हुए भी मन को अनुशासित नहीं किया, इसको सुनियोजित नहीं किया, वे असफल, अधूरा व दु:खी जीवन जीने के लिए अभिशप्त हुए। चटोरी जीभ वाला व्यक्ति, जिसका मन हर घड़ी स्वादिष्ट पदार्थों के लिए ललचाता रहता है, वह इस बुरी आदत के कारण ही अपनी पाचन शक्ति को खो बैठता है और पेट खराब हो जाने पर कई रोग उसे घेर लेते हैं।

कामवासना की लिप्सा जिनके मन पर चढ़ी रहती है, वे सोते-जागते अपने जीवन-रस को बेहिसाब निचोड़ते रहते हैं और अंत में भीतर से खोखले होकर असमय ही जरा-जीर्णता और अकाल-मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। जिनका मन पढ़ने में नहीं लगता, वे विद्यार्थी भला किस प्रकार अपनी प्रतिभा को निखार सकेंगे व सफलता का झंडा बुलंद कर पाएँगे। जिस व्यापारी का चित्त अपने व्यवसाय की बारीकियों पर नहीं जमता, उछला फिरता है, उससे पग-पग पर भूलें होती रहेंगी और वह सफलतापूर्वक अपने व्यवसाय को नहीं सँभाल सकेगा।

यही सिद्धांत हर क्षेत्र में लागू होता है, चाहे वह वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर हो या कलाकार, चित्रकार, शिक्षक, कवि, साहित्यकार कुछ भी हो। इसी तरह राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री से लेकर दार्शनिक, लोकनायक व अपने-अपने क्षेत्र में कुछ सार्थक कर गुजरने वाले अन्य व्यक्ति, सभी अपने मन को साधकर ही प्रतिभाशाली बनते हैं, जमाने को चमत्कृत करते हैं और अपने योगदान से समाज को लाभान्वित करते हैं।

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित योग-साधना मन की शक्तियों का नियोजन ही तो है, जिसमें चित्तवृत्तियों के निरोध के रूप में योग को परिभाषित किया गया है। विषय-विकारों की ओर से, माया-मोह की ओर से चित्त को हटा लेना ही मोक्ष है। ध्यान की तन्मयता में ही भगवान के दर्शन होते हैं। मूर्तिपूजा, कीर्तन, भजन-पूजन का उद्देश्य भी मन की एकाग्रता ही है। ये सारी साधनाएँ मन को साधने के लिए ही हैं।

भगवान के लिए क्या साधना करनी ? वे तो पहले से ही प्राप्त हैं, रोम-रोम में रमे हैं, असीम वात्सल्य और असीम करुणा की वर्षा करते हुए, अपना वरदहस्त पहले से ही हमारे सिर पर रखे हुए हैं, उन्हें प्राप्त करने में कठिनाई क्या है ?

कठिनाई तो बिगड़ैल मन की है, इसके कुसंस्कारों की है, जो आत्मा और परमात्मा के बीच में चट्टान बनकर अड़े हुए हैं। यदि वह

अपनी अकड़ से पीछे हट जाए, तो समझो मोक्ष और निर्वाण प्राप्त हुआ ही रखा है। मन के काबू में आते ही सारी सिद्धियाँ अपने आप ही मुट्ठी में आती जाती हैं।

इस तरह सधा हुआ मन प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है। इसकी सेवा से हम असीम लाभ और अनंत पुण्य प्राप्त कर सकते हैं। स्वार्थ और परमार्थ साध सकते हैं, लौकिक सुख और पारलौकिक शांति की कुंजी मुट्ठी में आ सकती है, पर यदि मन को नहीं साधा गया तो वह शैतान की तरह हमारे सर पर सवार होकर नाना प्रकार के कुकृत्य कराता है, विविधविध नाच नचाता है। यदि हम इसे वश में नहीं करते, तो इसके वश में होना हमारी नियति बन जाती है।

कहते हैं कि भूत लोगों को डराता और सताता रहता है, पर यदि कोई तांत्रिक उसे वश में कर ले, तो फिर वह उसे अपनी इच्छानुसार नचाता है, वह जो कुछ कराना चाहता है, करता है और वह जो मँगाता है, लाकर देता है। सचमुच का भूत किसी को देखना हो तो वह अपने मन के रूप में देख सकता है।

असंयमी और उच्छृंखल मन किसी प्रबल शत्रु, बेताल, ब्रह्मराक्षस से कम नहीं है, पर यदि उसे अनुशासित कर लिया जाए, साध लिया जाए तो वही परम मित्र बन जाता है, जीवंत-जाग्रत देवता की तरह सहायक सिद्ध होता है। अतः मनुष्य की सेवा का पहला हकदार उसका मन ही है। ❑

अपने पिता की मृत्यु होने पर एक व्यक्ति उनकी अस्थियों का कलश लेकर एक संत के पास पहुँचा और उनसे प्रार्थना करने लगा—''यदि वे कोई विशिष्ट अनुष्ठान कर दें तो उसके पिता को उच्च लोकों की प्राप्ति हो जाए।'' संत बोले—''ऐसा करो कि तुम एक कलश में घी और पत्थर भरकर ले जाओ और उसे पानी में डुबोकर फोड़ डालो।'' युवक को लगा कि यह जरूर कोई विशिष्ट अनुष्ठान है, सो उसने कहे का पालन किया और लौटकर सारा विवरण संत को सुनाया। संत ने उससे पूछा—''घी और पत्थर का क्या हुआ?''

वह युवक बोला—''महाराज! घी तैरने लगा और पत्थर डूब गए।'' यह सुनकर संत बोले—''तो अब ऐसा करो कि किसी पुरोहित से ऐसा मंत्र पढ़ने को कहो, जिससे घी डूब जाए और पत्थर ऊपर आ जाएँ।'' युवक बोला—''महाराज! क्यों मजाक करते हैं। भला ऐसा कैसे संभव है।'' संत बोले—''बेटा! फिर ऐसा कैसे संभव है कि तुम्हारे पिता को उनके कर्मों के अतिरिक्त प्रकृति में स्थान दिला दिया जाए। यदि उन्होंने जीवन में शुभ कर्म किए होंगे तो वे बिना किसी अनुष्ठान के श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करेंगे और यदि अशुभ कर्म किए होंगे तो सृष्टि की कोई शक्ति उन्हें उच्च लोक में आरूढ़ नहीं कर सकती। इसलिए व्यर्थ के क्रिया-कर्म में समय गँवाने के बजाय अच्छे कर्म करने में जीवन लगाओ, यही श्रेयस्कर मार्ग है।''

श्रीराम की आह्लादिनी शक्ति

पुराणों में माता सीता की विशिष्टता, अलौकिकता व महिमा का विस्तार से उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों में उन्हें सर्वशक्तिस्वरूपा, सर्वअसुर संहारिणी, सर्वक्लेशहारिणी देवी, आदिशक्ति आदि रूपों के साथ प्रभु श्रीराम की आह्लादिनी शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। वैष्णव संप्रदाय के धर्मशास्त्रों के अनुसार वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को माता सीता का आविर्भाव हुआ था। इस कारण यह सीतानवमी व जानकी जयंती के रूप में विख्यात है।

जिस प्रकार हिंदू धर्म में 'रामनवमी' का विशिष्ट माहात्म्य है, उसी प्रकार 'सीतानवमी' का भी है। भगवान श्रीरामचंद्र व माता सीता एक दूसरे के अभिन्न अंग माने जाते हैं। इस दिन वैष्णव संप्रदाय के भक्तजन माता सीता का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए विधि-विधान से व्रत-पूजन करते हैं। बिहार के सीतामढ़ी क्षेत्र के पुनौरा गाँव में राजा जनक को खेत में हल चलाते समय मिट्टी के घड़े से सीता जी प्राप्त हुई थीं। वहाँ पर सीता नवमी को भव्य आयोजन किया जाता है। मान्यता है कि जो व्यक्ति सीतानवमी के दिन सच्चे मन से श्रद्धापूर्वक श्रीरामसहित सीता माता का विधि-विधान से पूजन करता है, उसे घर बैठे सभी तीर्थों के दर्शन का फल सहज ही प्राप्त हो जाता है।

रामायण आदि विविध ग्रंथों में वर्णित कथानकों के मुताबिक माता सीता जनक की औरस पुत्री नहीं थीं। सीता जी की जन्मकथा से प्राय: सभी परिचित हैं, जिसके अनुसार मिथिलाँचल के शासक राजा जनक को राज्य को अकाल की त्रासदी से मुक्ति दिलाने के लिए ऋषियों के परामर्श पर खेत में हल चलाने के दौरान एक घड़े से सुंदर कन्या मिली व निस्संतान राजा जनक ने उस कन्या को ईश्वर की कृपा मानकर पुत्री रूप में स्वीकार कर सीता नाम दे दिया।

इस नाम के पीछे भी कारण हैं। हल का फाल जिसे 'सीता' कहते हैं—उसके घड़े से टकराने से वह कन्या मिली थी, इसलिए उस कन्या का नाम 'सीता' रखा गया। इन विवरणों के अनुसार सीता राजा जनक की अपनी पुत्री नहीं थी। धरती के भीतर से निकले घड़े से प्राप्त होने के कारण सीता जी भी स्वयं को धरती माता की पुत्री मानती थीं। वास्तव में सीता जी के पिता कौन थे और घड़े में सीता जी कैसे आईं, इस बारे में विविध विवरण अलग-अलग भाषाओं में लिखी गई रामकथाओं से प्राप्त होते हैं।

दक्षिण भारत की 'अद्‌भुत रामायण' में उल्लेख मिलता है कि गृत्स्मद नामक एक महातेजस्वी ऋषि माँ लक्ष्मी (हिंदू धर्म में सीता जी को माँ लक्ष्मी का अवतार माना गया है) को पुत्री रूप में पाने की कामना से प्रतिदिन एक कलश में कुश के अग्र भाग से मंत्रोच्चारण के साथ दूध की बूँदें डालते थे। राक्षसराज लंकापति रावण में उनसे सीधे मुकाबला करने की सामर्थ्य नहीं थी, इसलिए उसने एक योजना बनाई।

एक दिन गृत्स्मद ऋषि जब अपने आश्रम से कहीं बाहर गए हुए थे तो रावण छल से उनके आश्रम में घुस गया व वहाँ साधनारत अन्य ऋषियों को मारकर उनका रक्त उसी कलश में भर दिया, जिसमें ऋषि गृत्स्मद मंत्रों से अभिसिंचित दूध डालते थे। फिर उसने उस कलश को लाकर अपनी पत्नी

मंदोदरी को यह कहते हुए सौंप दिया कि यह तेज विष है, इसे छिपाकर रख दो।

रावण की पटरानी मंदोदरी जो पति के क्रियाकलापों व उसकी उपेक्षा से दु:खी रहती थी, एक दिन जब रावण बाहर गया था, तब उन्होंने मौका देखकर अपनी जीवनलीला समाप्त करने की मंशा से कलश में रखा रक्त पी लिया, किंतु चमत्कार हो गया। मृत्यु के बजाय मंदोदरी गर्भवती हो गई। जब गृत्समद ऋषि को पूरे घटनाक्रम की जानकारी हुई तो उन्होंने रावण को शाप देते हुए कहा कि जिस कलश का पेय पदार्थ पीने से तुम्हारी पत्नी गर्भवती हुई, उसी पदार्थ से जन्मी बालिका तुम्हारा काल बनेगी। कालांतर में वह घटना सच साबित हुई, जब रावण ने सीता का हरण किया व राम के हाथों उसको परमगति प्राप्त हुई।

महारामायण में जिन 33 देवियों का उल्लेख है, उनमें सीता जी को आद्यशक्ति के रूप में निरूपित किया गया है। इस ग्रंथ में सीता माता को कई अन्य नामों से भी संबोधित किया गया है, जो इस प्रकार हैं—सूयते (जगत् की उत्पत्तिकर्त्ता), सवति (ऐश्वर्ययुक्त), स्यति (संहारकर्त्ता), सुवति (सत्प्रेरणा देने वाली), सिनोति (वश में करने वाली) व श्यामते (सर्वत्रगामिनी)।

इसी तरह दूसरे आर्ष ग्रंथों में सीता जी के अन्य नाम हैं—मातुलुंगी (फलोत्पन्न), अग्निगर्भा (आग से उत्पन्न), रत्नावली (रत्न में वास करने वाली), धरणिता, भूमिजा, भूसुता, भूमिसुता (धरती से उत्पन्न होने के कारण), अयोनिजा (अमानवी उत्पत्ति) तथा मैथिली, जानकी, वैदेही व रामवल्लभा।

भगवती सीता श्रीरामचंद्र की अभिन्न लीलासहचरी मानी जाती हैं। इन्हें श्रीराम की शक्ति व रामकथा का प्राण कहा जाता है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार त्रेतायुग में जब भगवान विष्णु अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र रामचंद्र के रूप में अवतरित हुए तो उनकी चिरसंगिनी माता लक्ष्मी भी मिथिला के राजा जनक को पुत्री रूप में प्राप्त हुईं।

दोनों ही ईश्वरीय शक्तियों ने अपने मानवस्वरूप में जीवन के सभी क्षेत्रों में मर्यादा के सर्वोच्च उदाहरण प्रस्तुत किए। अध्यात्म रामायण में सीता जी को जगन्माता के रूप में दरसाते हुए इस तथ्य का प्रतिपादन किया कि भगवती सीता की योगमाया के कारण ही श्रीराम इस समूचे विश्व में प्रकाशमान हैं। उनके बिना श्रीराम अपूर्ण हैं।

इसी तरह श्रीरामचरितमानस जैसे अनुपम लोकग्रंथ के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने इस कृति के बालकांड में उद्भव, पालन व संहारकारिणी देवी के रूप में माता सीता की वंदना की है। 'मानस' के बालकांड में माता सीता के उद्भवकारिणी रूप के दर्शन होते हैं।

श्री सीता-राम विवाह का संपूर्ण आकर्षण सीता जी के रूप-ऐश्वर्य में समाहित दिखता है। वहीं अयोध्याकांड से अरण्यकांड तक वे स्थितिकारिणी व करुणा-क्षमा की साक्षात् मूर्ति दिखती हैं। श्रीराम की श्रीरूपाशक्ति देवी सीता का संपूर्ण चरित्र अनुकरणीय व वंदनीय है। अत: हमें माता सीता की सदैव भक्तिपूर्वक वंदना करनी चाहिए। ❑

युग-परिवर्तन में दृश्यमान भूमिका तो प्रामाणिक प्रतिभाओं की ही रहेगी, पर उसके पीछे अदृश्य सत्ता का असाधारण योगदान रहेगा। कठपुतलियों के दृश्यमान अभिनय के पीछे भी तो बाजीगर की उँगलियों से बँधे हुए तार ही प्रधान भूमिका निभाते हैं। सर्वव्यापी सत्ता निराकार है, पर घटनाक्रम तो दृश्यमान शरीरों द्वारा ही बन पड़ते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति संत एकनाथ

एकनाथ महाराज एक उच्चकोटि के संत थे। अपनी सच्ची भगवद्भक्ति और गुरुभक्ति के कारण उन्हें ब्रह्मसाक्षात्कार की परम उपलब्धि हुई थी। वे पैठण (महाराष्ट्र) में गोदावरी नदी में नित्य ब्राह्ममुहूर्त में स्नान कर त्रिकाल संध्यावंदन किया करते, नित्य अग्निहोत्र करते, शास्त्रों का स्वाध्याय करते और अतिथियों की ब्रह्मभाव, देवभाव के साथ आवभगत किया करते थे।

वे ब्रह्मदृष्टि से ही संपूर्ण जगत् को, जीव को देखा करते थे। वे निराकार ब्रह्म को संपूर्ण रूप में समस्त विश्व-ब्रह्मांड व समस्त भूतों के रूप में देखा करते थे। वे सदा की भाँति मध्याह्नकाल में दूसरी बार के संध्यावंदन हेतु गोदावरी नदी से स्नान कर के लौट रहे थे। उसी रास्ते पर एक यवन रहता था। वह दूसरे धर्म के लोगों व संतों के प्रति घृणा व नफरत का भाव रखता था। वह उस रास्ते से गुजरने वाले धर्मावलंबियों को किसी-न-किसी रूप में अवश्य ही परेशान किया करता था।

वह संत एकनाथ को रोज सुबह, दोपहर, शाम को उसी रास्ते से गोदावरी नदी से स्नान कर लौटते हुए देखकर मन-ही-मन चिढ़ा करता था। आदतन वह उन्हें भी परेशान करने की सोचने लगा और इस प्रकार संत एकनाथ जब भी गोदावरी नदी से स्नान कर उस रास्ते से लौट रहे होते, तभी वह उन पर गंदा पानी डाल दिया करता था।

इससे संत एकनाथ को किसी-किसी दिन तो चार-चार, पाँच-पाँच बार स्नान करना पड़ता था। कभी वह उन्हें स्नान कर लौटता हुआ देख उन पर थूक दिया करता था, कभी धूल या अन्य गंदी चीजें भी फेंक दिया करता था, जिससे कि उन्हें लौटकर फिर से स्नान करना पड़े। चूँकि संत एकनाथ कोई प्रतिकार नहीं करते थे, इसलिए वह दुष्ट व्यक्ति उनके साथ कुछ ज्यादा ही दुष्टता करने लगा।

यदि संत एकनाथ की जगह कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह तुरंत उस दुष्ट व्यक्ति को दंडित करता, पर एकनाथ तो संत थे। वे उलटे मन-ही-मन उस दुष्ट व्यक्ति को यह सोचकर धन्यवाद देते कि उसी के कारण उन्हें बार-बार लौटकर गोदावरी नदी में स्नान करने का सौभाग्य जो प्राप्त हो रहा है।

एक बार प्रतिदिन की भाँति संत एकनाथ स्नान कर लौट रहे थे तब संयोग से उस दिन वह व्यक्ति उन्हें रास्ते में मिला नहीं। उस दुष्ट व्यक्ति का उन्हें परेशान करने का नियम भंग न हो, यह सोचकर संत एकनाथ रास्ते में कुछ देर ठहरकर उसके आने की प्रतीक्षा करने लगे, पर देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब वह नहीं आया तो वे आगे चले गए। अगले दिन तो उस व्यक्ति ने दुष्टता की सारी हदें पार कर दीं।

संत एकनाथ स्नान करके आते और वह उन पर थूकता जाता। वे पुनः स्नान करके लौटते और वह पुनः उन पर थूक देता। इस प्रकार उसने उस दिन एक सौ आठ बार उन पर थूका और वे उतनी ही बार वहाँ से पुनः लौट-लौटकर गोदावरी स्नान करते रहे। इस पर भी संत एकनाथ की शांति, सहिष्णुता भंग नहीं हुई।

एक उन्मत्त व्यक्ति की उन्मत्तता और एक संत की सहिष्णुता का यह द्वंद्व दृश्य देखने को उस दिन

वहाँ हजारों लोग जमा हो गए। अंततः उस दिन वह दुष्ट व्यक्ति उन्हें परेशान कर-करके थक गया।

संत एकनाथ की शांति और सहिष्णुता देखकर वह बहुत ही लज्जित हुआ। वह उनके चरणों में लेटकर उनसे क्षमा-याचना करने लगा। साथ ही वह उनके समक्ष अपनी तारीफ करते हुए स्वयं के बारे में कहने लगा कि हे महात्मन्! मैं भी नित्यदिन चार बार नमाज पढ़ा करता हूँ।

पहले तो संत प्रवर ने उसे हृदय से क्षमा प्रदान की, साथ ही मन-ही-मन भगवान से उसके कल्याण की प्रार्थना की, तत्पश्चात उसे सम्यक ज्ञान बोध कराने की दृष्टि से उन्होंने उससे कहा—

मसजिद में ही जो अल्लाह खड़ा।
तो और स्थान क्या खाली पड़ा?

चारों वक्त नमाजों के। क्या और वक्त हैं चोरों के?

एक जनार्दन का बंदा। जमीन आसमान भरा खुदा॥

इन पंक्तियों के माध्यम से उन्होंने उसे यह समझाया कि परमात्मा किसी एक जगह में ही बँधा नहीं है। वह सब जगह मौजूद है। वह परमात्मा सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वसाक्षी है। वह सबका है। वह सबके हृदय में है। अस्तु मनुष्य को चाहिए कि वह उसे सर्वत्र देखे, सबमें देखे। मनुष्य को चाहिए कि वह कभी बुरा कर्म न करे; क्योंकि वह परमात्मा सबको और सब कुछ देख रहा है।

संत प्रवर के उपदेश से उस व्यक्ति का चिंतन बदल गया। उस दिन से वह सबसे बड़े विनय और नम्रता के साथ व्यवहार करने लगा। सचमुच बड़ी अद्‌भुत थी संत एकनाथ की साधुता और सहिष्णुता। साधुता और सहिष्णुता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे संत एकनाथ। ❑

महर्षि आश्वलायन अपने शिष्यों के साथ बैठकर तत्त्व चर्चा करने में निमग्न थे। उन्होंने अभी-अभी गुह्यसूत्रों की विवेचना की ही थी। उनसे उनके शिष्य ने पूछा—''गुरुवर! जब आप कर्मों के क्षय को ही चित्तशुद्धि का एकमात्र मार्ग बताते हैं तो ऐसे में भाग्य का स्थान क्या रह जाता है?'' महर्षि आश्वलायन ने उत्तर दिया—''वत्स! पुरुषार्थ एक नियम है और भाग्य एक अपवाद से बढ़कर कुछ नहीं। सृष्टि के इतने बड़े उपक्रम में अपवादों का भी अपना अस्तित्व है, पर अपवादों को ध्यान में रखकर न तो उनके आधार पर कोई नीति अपनाई जा सकती है और न ही जीवन की दिशाधारा तय की जा सकती है। सत्य यही है कि सृष्टि के हर प्राणी को कर्मानुसार स्थान मिलता है, अवसर मिलता है और संभावनाएँ मिलती हैं। भाग्य से या दैवी अनुग्रह से कुछ कर पाने वाले अपवाद के तौर पर ही पाए जाते हैं और इस हेतु मिली कृपा से उनकी चित्त की शुद्धि तो कभी नहीं होती। अतः पुरुषार्थपूर्वक कर्मों का क्षय ही चित्तशुद्धि का एकमात्र मार्ग है।''

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना

ब्रह्म आदि है, अनंत है; क्योंकि उसका न तो कोई आरंभ है और न ही कोई अंत है। वह असीम है; क्योंकि उसकी कोई सीमा नहीं। वह अरूप है; क्योंकि उसका कोई रूप नहीं। वह निराकार है; क्योंकि उसका कोई आकार नहीं। पर वही निर्गुण, निराकार, अरूप, अव्यक्त ब्रह्म अपनी इच्छा व संकल्प मात्र से निराकार होते हुए भी साकार हो जाता है, निर्गुण होते हुए भी सगुण हो जाता है। अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हो उठता है। अरूप होते हुए भी वह सरूप हो जाता है। क्यों ?

क्योंकि उस सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिशाली ब्रह्म के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। उस ब्रह्म की महिमा को प्रकाशित करते हुए भगवान शिव रामचरितमानस में माता पार्वती से कहते हैं—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

अर्थात वह (ब्रह्म) बिना पैर के चलता है, बिना कान के सुनता है, बिना हाथ के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह (जिह्वा) के ही सारे रसों का आनंद लेता है और बिना वाणी के योग्य वक्ता है। वह बिना शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना आँखों के देखता है और बिना नाक के सब गंधों को ग्रहण करता है (सूँघता) है। उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

वह ब्रह्म स्वयं की इच्छा व संकल्प के कारण अगुण होते हुए भी सगुण हो जाता है, निराकार होते हुए भी साकार हो जाता है, अरूप होते हुए भी सरूप हो जाता है, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हो जाता है। इसीलिए तो भगवान के विभिन्न अवतारों में निर्गुण, निराकार, अरूप, अव्यक्त, ब्रह्म ने स्वयं को विभिन्न रूपों में, गुणों में व्यक्त किया।

उस निर्गुण, निराकार, अव्यक्त, अरूप ब्रह्म ने ही स्वयं को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, दुर्गा, काली, लक्ष्मी, राधा, गायत्री आदि विभिन्न रूपों में व्यक्त किया। उस ब्रह्म की कोई प्रतिमा नहीं, पर उस ब्रह्म ने मीराबाई, रामकृष्ण परमहंस जैसे निश्छल, निर्दोष भक्तों के लिए स्वयं को प्रतिमा में भी प्रकट किया।

निर्गुण, निराकार ब्रह्म ने ही स्वयं को शबरी, सूरदास, तुलसीदास, संत नामदेव, संत एकनाथ, तुकाराम जैसे भक्तों के समक्ष स्वयं को साकार रूप में प्रकट किया। समय-समय पर विभिन्न युगों में उसी निराकार ब्रह्म ने जगत् के एवं भक्तों के कल्याण के लिए स्वयं को व्यक्त किया है। अस्तु सगुण और निर्गुण, अव्यक्त और व्यक्त, अरूप और सरूप में कोई भेद नहीं, कोई अंतर नहीं। भगवान शिव इसी सत्य को रामचरितमानस में प्रकाशित करते हुए कह रहे हैं—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥

अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा।
तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥
हरष विषाद ग्यान अग्याना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानंद परेस पुराना॥

अर्थात सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है—मुनि, पुराण, पंडित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप (निराकार), अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता है। जो निर्गुण है, भला वही सगुण कैसे है ? वैसे ही जैसे जल और ओले में कोई भेद नहीं है। जल और ओला, दोनों जल ही हैं। वैसे ही निर्गुण और सगुण, दोनों एक ही हैं।

हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, अहंता और अभिमान ये सब जीव के धर्म हैं, स्वभाव हैं, प्रकृति हैं, पर श्रीरामचंद्र जी तो व्यापक ब्रह्म, परमानंदस्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराण पुरुष हैं, इस बात को सारा जगत् जानता है। अब प्रश्न यह उठता है कि उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए हम करें तो क्या करें ? उस ब्रह्म को हम पाएँ तो पाएँ कहाँ ? इस प्रश्न का समाधान हम पाएँ तो कैसे पाएँ ?

रामचरितमानस की प्रस्तुत चौपाइयों में भगवान शिव इन्हीं प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं—

बैठे सुर सब करहिं बिचारा।
कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई।
कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥
जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती।
प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ।
अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना।
साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥

अर्थात शिव जी माँ भवानी (पार्वती) से कहते हैं कि एक बार सभी देवता बैठकर यह विचार करने लगे कि प्रभु (ब्रह्म) को कहाँ पावें, ताकि उनके सामने पुकार कर सकें। इसको लेकर कोई बैकुंठपुरी जाने को कहता था और कोई कहता था कि वही प्रभु क्षीरसागर में निवास करते हैं। जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, उसके लिए प्रभु वहाँ सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। हे पार्वती ! उस समय मैं भी उसी समाज में देवगणों के बीच बैठा था।

अवसर पाकर मैंने कहा—"मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान सब जगह समान रूप से व्यापक हैं, प्रेम से वे प्रकट हो जाते हैं। देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ ऐसी कोई जगह है, जहाँ प्रभु न हों। वे प्रभु तो चराचरमय होते हुए भी सबके रहित हैं और विरक्त हैं। वे प्रेम से प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि। अग्नि अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त है, परंतु साधन विशेष के सहारे वह कहीं भी प्रकट हो जाती है। उसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान भी प्रेम से प्रकट होते हैं। उस देव-समाज में बैठे सबको मेरी यह बात प्रिय लगी और ब्रह्मा जी ने 'साधु-साधु' कहकर मेरी बड़ाई की।"

अस्तु यह स्पष्ट है कि सगुण और अगुण में कोई भेद नहीं। निर्गुण, निराकार, अव्यक्त, अदृश्य,

अरूप ब्रह्म ही सगुण, साकार, व्यक्त, दृश्य, सरूप में ईश्वर हैं, परमेश्वर हैं, परमात्मा हैं। निर्गुण, निराकार ब्रह्म ही सगुण और साकार होता है, अदृश्य ब्रह्म ही दृश्य होता है, अव्यक्त ब्रह्म ही व्यक्त होता है। अरूप ब्रह्म ही सरूप, सगुण होता है। जो दूर है, वही पास होता है।

पर उपासना करें किसकी? सगुण की या अगुण की? व्यक्त की या अव्यक्त की? दृश्य की या अदृश्य की? रूप की या अरूप की? साकार की या निराकार की? निस्संदेह भगवद्उपासना, भगवद्ध्यान के लिए सगुण और अगुण, साकार और निराकार दोनों ही मार्ग साधकों के लिए सुलभ हैं और अपनी रुचि, अभिरुचि व प्रकृति के अनुसार वे स्वयं के लिए दोनों में से किसी भी स्वरूप का चयन कर सकते हैं।

आध्यात्मिक जगत् में अगणित साधकों ने साकार (सगुण) और निराकार (अगुण, निर्गुण) ब्रह्म की उपासना करके ब्रह्म की प्राप्ति की है। उस ब्रह्म का अपने हृदय में सतत ध्यान करते हुए अगणित साधकों ने ब्रह्म को प्राप्त किया है और ब्रह्मानंद की अनुभूति की है। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, काली, दुर्गा, गायत्री आदि विभिन्न सगुण, साकार रूपों, छवियों, मूर्तियों आदि का ध्यान, स्मरण करना सगुण या साकार उपासना है और बिना किसी छवि, रूप, स्वरूप, प्रतिमा का अवलंबन लिए ब्रह्म की उपासना, ध्यान करना निराकार, निर्गुण उपासना है।

इन दोनों मार्गों से साधक ब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है, पर सगुण और निर्गुण (अगुण) में अधिक सरल, सुगम और श्रेष्ठ कौन-सा है—यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से साधकों के मन में उठता है। कुरुक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण के मुख से गीता का अमृत ज्ञान सुन रहे अर्जुन के मन में भी यह प्रश्न उठा था, तभी तो गीता के 12वें अध्याय के प्रथम श्लोक में अर्जुन ने अपनी यह जिज्ञासा भगवान के समक्ष रखी और कहा—"हे भगवान! जो अनन्यप्रेमी भक्तजन आप सगुण रूप परमेश्वर का भजन-ध्यान करते हैं और दूसरे जो केवल अविनाशी, सच्चिदानंदघन, निराकार ब्रह्म को ही अतिश्रेष्ठ भाव से भजते हैं—उन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम कौन हैं?"

तब गीता (12.2,3,4,5,6,7,8) में भगवान श्रीकृष्ण बोले—"मुझमें मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन-ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मुझको योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं, परंतु जो पुरुष इंद्रियों के समुदाय को भली प्रकार वश में करके मन-बुद्धि से परे, सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानंदघन ब्रह्म को निरंतर एकाकीभाव से ध्यान करते हुए भजते हैं, वे संपूर्ण भूतों के हित में रत और सबमें समान भाव वाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं। पर हाँ, उन सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में आसक्त चित्तवाले पुरुषों के साधन में परिश्रम विशेष हैं; क्योंकि देहाभिमानियों के द्वारा अव्यक्त विषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।

"जो मेरे परायण रहने वाले भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके मुझ सगुण रूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्तियोग से निरंतर चिंतन करते हुए भजते हैं, हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ। इसलिए हे अर्जुन! तू मुझमें (सगुण, साकार, परमेश्वर में) मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा, इसके उपरांत तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।"

वास्तव में उस ब्रह्म की अनुभूति पाने और उसे प्राप्त करने के लिए ही हमें यह मनुष्य जीवनरूपी दुर्लभ साधन प्राप्त हुआ है। इसलिए इस मनुष्य शरीर को साधन का धाम और मोक्ष का द्वार कहा गया है। जो मनुष्य इस साधन को योग-साधना के बजाय भोग-वासना में बरबाद कर देता है, वह लोक-परलोक दोनों में दु:ख पाता है। वह सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा अपने दु:खों के लिए दूसरों को दोषी ठहराता है।

जो लोग मनुष्य शरीर पाकर भी ब्रह्मप्राप्ति हेतु साधन-पुरुषार्थ करने के बजाय सदैव भोग-विषयों में ही डूबे रहते हैं, वे दरअसल ब्रह्मरूपी अमृत को त्यागकर विषयरूपी विषपान ही करते हैं और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाया करते हैं।

जो लोग अपने मनुष्य जीवन को सफल करना चाहते हैं, लोक-परलोक में सुख, शांति, आनंद और मुक्ति चाहते हैं, उन्हें सच्ची श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, विश्वास के साथ नित्य ब्रह्मचिंतन, ध्यान, स्मरण, भजन, संयम, स्वाध्याय, सेवा आदि करते रहना चाहिए। इसी से लोक-परलोक में सुख प्राप्त होता है, साथ ही ब्रह्म की प्राप्ति कर जीवात्मा जन्म-मरण के बंधनों से भी सदा के लिए मुक्त हो जाती है। ❑

राजा शीलनीधि उदार एवं प्रजा का ध्यान रखने वाले शासक थे। उन्होंने नगर में घोषणा करा रखी थी कि यदि राज्य में किसी विक्रेता की कोई वस्तु न बिके तो वे उसे स्वयं ले लेंगे, ताकि उनकी प्रजा सुखी रह सके। एक दिन एक मूर्तिकार उनके पास दरिद्रता की मूर्ति लेकर आया और उनसे बोला—''महाराज! मेरी बनाई यह मूर्ति कोई नहीं खरीदता, इसे आप ले लें।'' राजा के मंत्रियों ने राजा को समझाया कि दरिद्रता को घर में स्थान देने से माँ लक्ष्मी रुष्ट हो सकती हैं, अतः यह मूर्ति न खरीदें। पर राजा वचनबद्ध थे, उन्होंने बिना किसी चिंता के वह मूर्ति क्रय कर ली। जब वे राजदरबार से अंत:पुर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वहाँ दो दिव्य शरीरधारी पुरुष व स्त्री आकृतियाँ खड़ी हैं, जो उन्हें देखकर बोलीं—''राजन्! हम लक्ष्मी एवं नारायण हैं। तुमने हमारा अपमान किया है, अतः हमें तुम्हारा स्थान छोड़कर जाना होगा।''

राजा शीलनीधि करबद्ध होकर बोले—''प्रभु! मैं आपका अपराधी अवश्य हूँ, पर प्रजा का स्वामी होने के नाते मैं उसके प्रति वचनबद्ध हूँ। अपने दिए गए वचन से पलटने पर मैं अधर्म का अधिकारी बनूँगा, जो सही नहीं होगा।'' राजा के यह कहने पर लक्ष्मी-नारायण की वे आकृतियाँ अंतर्धान हो गईं, परंतु वहाँ एक अन्य दिव्य पुरुष की आकृति प्रकट हो गई। वे दिव्य पुरुष राजा शीलनीधि को संबोधित करते हुए बोले—''राजन्! मैं धर्म हूँ। आपकी यह परीक्षा मैंने ही ली थी। जो राजा अभावों का संकट सामने होने पर भी अपने दिए गए वचन के प्रति समर्पित रहता है, उसके यहाँ मैं स्वयं उपस्थित रहता हूँ और मेरे रहते वहाँ किसी प्रकार का अभाव जन्म नहीं ले सकता। तुम्हारे राज्य में सब सदा सुखी रहेंगे।'' राजा का धर्मपालन विजयी हुआ।

शंकर एवं शिव का मिलन

एक दिन समाधि से जागकर योगीराज गोविंदपाद ने अपने शिष्य आचार्य शंकर को आशीर्वाद देते हुए कहा—''वत्स शंकर! तुम्हारे मन में अभी भी यदि कोई जिज्ञासा हो तो मुझे अवश्य बताओ।'' शंकर ने बड़ी नम्रता से कहा—''गुरुदेव! आपके दर्शन और आशीर्वाद से मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं। आपकी कृपा से मुझे सब कुछ प्राप्त हो चुका है। पर हाँ! यदि आपकी अनुमति हो तो मैं एकाग्रचित्त होकर चिर निर्वाण लाभ प्राप्त करना चाहता हूँ।''

शंकर की चिर निर्वाण की इच्छा सुनकर योगीराज कुछ देर मौन रहे, फिर बोले—''वत्स! धर्म के पुनर्जागरण हेतु देवाधिदेव शंकर के अंश व आशीर्वाद से तुम्हारा जन्म हुआ है। अद्वैत ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है। मैं अपने गुरुदेव की आज्ञा से सहस्र वर्ष से तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। अब मेरा कार्य समाप्त हो चुका है। मैं समाधियोग से अब अपने स्वरूप में लीन हो जाऊँगा। तुम काशीधाम जाओ। वहाँ तुम्हें भगवान शंकर के दर्शन होंगे। वो तुम्हें जो भी आदेश देंगे, तुम उसी का पालन करना।''

शंकर मस्तक झुकाए चुपचाप अपने गुरु की बातें सुन रहे थे। गुरुदेव अब हम सबसे बिछड़ने वाले हैं, यह सोचकर उनकी आँखों में आँसू छलछला आए। उन्होंने मुँह मोड़कर हाथ से आँसू पोंछ डाले और गुरुदेव से आज्ञा लेकर गुफा से बाहर आए। अगले दिन गोविंदपाद जी ने अपने सभी शिष्यों, संन्यासियों को बुलाकर उन्हें साधना का उपदेश व आशीर्वाद दिया। फिर वे शांत होकर बैठ गए और समाधियोग द्वारा देह त्याग दी।

सभी शिष्यों ने अपने गुरुदेव पर श्रद्धा-सुमन चढ़ाकर नर्मदा के पावन जल में उनका अंतिम संस्कार कर दिया। अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार शंकर वाराणसी की ओर चल पड़े। कई संन्यासी भी तीर्थयात्रा करने को शंकर के साथ चल पड़े। महीनों की पैदल यात्रा के बाद शंकर वाराणसी पहुँचे।

शंकर वहाँ एक एकांत निर्जन स्थान मणिकर्णिका के निकट रहने लगे। उनके साथ अन्य संन्यासी भी वहीं रहने लगे। फिर प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में जागकर नित्यकर्मों से निवृत्त होकर वे गंगास्नान करते एवं उसके उपरांत श्री विश्वनाथ भगवान व अन्नपूर्णा के दर्शन करते और ध्यान में लीन रहते।

यहाँ रहकर गंगास्नान कर बाबा विश्वनाथ के दिव्य दर्शन करते हुए, ध्यान करते हुए आचार्य शंकर को हर पल अप्रतिम, अलौकिक आनंद की अनुभूति हो रही थी। उनका मन स्वत: ही ब्रह्मानंद में लीन रहता था।

ग्यारह वर्ष की अल्प अवस्था का एक तेजस्वी व ज्ञानी बालसंन्यासी वाराणसी में मणिकर्णिका के निकट ठहरा हुआ है, यह चर्चा चारों ओर होने लगी और उनके पास श्रद्धालुओं के आने का सिलसिला भी शुरू हो गया।

शंकर उन श्रद्धालु भक्तों को अद्वैत ब्रह्मतत्त्व का उपदेश देते। ब्रह्मतेज से चमकते उनके मुख को देखकर और उनके ब्रह्मज्ञान को सुनकर लोग उनके

प्रति आकर्षित होते जाते। धीरे-धीरे विभिन्न दर्शनों के ज्ञाता, भिन्न-भिन्न मत वाले संन्यासी शंकर से शास्त्रार्थ करने आने लगे।

शंकर सबकी जिज्ञासाओं का शास्त्रसम्मत समाधान करते और सब प्रसन्नचित्त होकर वहाँ से लौट जाते। कई उनसे वाद-विवाद करने आते, अपने पांडित्य का प्रदर्शन कर शंकर को परास्त करने की इच्छा लेकर आते, पर शंकर की प्रतिभा, विद्वत्ता, ज्ञान और अकाट्य तर्क के आगे नतमस्तक होकर अंततः वे पराजय स्वीकार कर लेते थे और कई उनसे प्रभावित होकर उनके शिष्य बन जाते। सनंदन आचार्य शंकर के प्रथम शिष्य बने।

आचार्य शंकर अधिकांशतः ब्रह्म में ही लीन रहा करते थे। वे तो देवकार्य के लिए ही अवतीर्ण हुए थे, अतः उन्हें देवकार्य-साधना के लिए ब्रह्मानुभूति में रहना था। ज्ञानियों की अद्वैत भूमि पर जो निर्गुण ब्रह्म परमात्मा है, वही द्वैत भूमि पर सगुण ईश्वर है।

आचार्य शंकर अपने शिष्यों, साधकों, श्रद्धालुओं को उपदेश देते कि सगुण-उपासना निर्गुण तक पहुँचने की सीढ़ी है। अद्वैत ज्ञान ही सभी साधनाओं की परम उपलब्धि है; अंतिम अवस्था है। शंकर अपने शिष्यों को उपदेश देते-देते इष्ट के ध्यान में खो जाते तो कभी इष्ट के ध्यान में मग्न होकर स्तुति करने लगते—"हे नाथ! मेरे और तुम्हारे बीच जो भेद है, उसे जानते हुए भी मैं तुम्हारा हूँ। समुद्र और तरंग एक होने पर भी समुद्र की तरंगें कहलाती हैं, पर तरंगें समुद्र को अंश कहने का दावा नहीं कर सकतीं।"

शंकराचार्य स्तुति करते हुए समाधि में लीन हो जाया करते थे। उस समय उनके समीप बैठे गुरुप्रेमी सनंदन उनकी देख-भाल करते। गुरुसेवा में निमग्न सनंदन को न खाने की सुध थी न ही सोने की। शंकराचार्य ही जब समाधि से उठते तो सनंदन को बड़ी कठिनाई से विश्राम कराते।

उसे समझाते हुए शंकर कहते—"सनंदन! इस नाशवान शरीर से प्रेम क्या करना। प्रेम करना ही है तो उससे करो, जो नित्य है, सत्य है, सनातन है, शाश्वत है, जो अजर है, अमर है, अक्षर है, अविनाशी है और वह आत्मा है। अस्तु प्रेम आत्मा से करो, परमात्मा से करो, ब्रह्म से करो।"

तब सनंदन कहते—"गुरुदेव! आपके रूप में मैं उसी परमात्मा से, ब्रह्म से ही तो प्रेम करता हूँ। मैं विनाशी से कहाँ प्रेम करता हूँ।" इस प्रकार सनंदन की ज्ञानभरी बातें सुनकर गुरु आचार्य शंकर मुस्करा देते।

आचार्य शंकर समाधि योग के द्वारा ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित हुए थे। देवकार्य के लिए उनका जन्म हुआ था। अस्तु निर्विकल्प समाधि में आत्मानंद करके ही उनका कर्त्तव्य पूर्ण नहीं होता था। 'सर्व ब्रह्ममय जगत्' एवं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' रूप महावाक्य का उनके जीवन में प्रत्यक्ष घटित होने व अनुभूति होने का समय अब आ चुका था।

साथ ही गुरु गोविंदपाद के कहे अनुसार आचार्य शंकर को काशीधाम में भगवान शंकर एवं माँ भवानी के दर्शन पाने की शुभ घड़ी भी आ चुकी थी। सो माँ भवानी एवं भवानीपति शंकर ने एक अद्भुत लीला रची। उस दिन भी शंकराचार्य ब्राह्ममुहूर्त में जागकर लंबे-लंबे डग भरते हुए मणिकर्णिका घाट की ओर जा रहे थे। अचानक ही किसी स्त्री का विलाप सुनकर वह ठिठककर खड़े हो गए और उसे देखने लगे। वह स्त्री अपने पति का शव लिए बैठी हुई रो रही थी।

शंकराचार्य जी का हृदय करुणा से भर उठा। वह उस स्त्री को सांत्वना देते हुए बोले—"देवी! जरा शव को एक ओर हटा लो, तो हम स्नान के लिए आगे जाएँ।" उस स्त्री ने शंकराचार्य की ओर

देखा और बोली—''महात्मन्! आप शव को रास्ते से हट जाने को कह दीजिए।'' आचार्य शंकर बोले—''माँ! भला यह कैसे संभव हो सकता है कि शव स्वयं ही रास्ते से हट जाए। शव में हटने की शक्ति कहाँ है? आप ही उसे रास्ते से अलग हटा दीजिए। हमें स्नानादि कार्यों के लिए देर हो रही है।''

वह स्त्री बोली—''महात्मन्! आपके मत में तो शक्तिनिरपेक्ष ब्रह्म ही जगत् का कर्त्ता है, फिर शक्ति के बिना शव क्यों नहीं हट सकता।'' यह कहते हुए वह स्त्री शवसहित अंतर्धान हो गई। आचार्य शंकर ने उस स्त्री की ज्ञान भरी बातें सुनकर ध्यान से उस स्त्री की ओर देखा, पर वहाँ अब न तो स्त्री थी न ही शव था। यह कैसी लीला थी। शंकर ने मन-ही-मन सोचा—अहा! यह तो साक्षात् आद्यशक्ति महामाया की ही लीला थी। साक्षात् माँ भवानी ही मुझे ज्ञान बोध कराने आई थीं, पर मैंने माँ भवानी को पहचाना नहीं।

आचार्य शंकर को अपनी आत्मा में अप्रतिम आनंद की अनुभूति हुई। माँ भवानी, शक्ति की महिमा ही तो दिखाने आई थीं, यह सोचते हुए शंकर वहीं बैठकर माँ भवानी की स्तुति करते हुए कहने लगे—''हे भवानी! आप ही परब्रह्मरूपा हैं, आप ही आद्यशक्ति हैं। आप सर्वव्यापी हैं, सर्वशक्तिशाली हैं। आप मेरी रक्षा करें। मैं आपका शरणागत हूँ। आपने मुझ पर कृपा करके अपने अस्तित्व का परिचय दिया है।''

इस अलौकिक घटना से आचार्य शंकर के चिंतन में अंतर आ गया और उन्होंने अनुभव किया कि जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं, निर्विशेष ब्रह्म केवल द्रष्टामात्र है। जगत् की रचना तो आद्यशक्ति महामाया ने की है। आचार्य शंकर समाधियोग द्वारा अद्वैत ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित हुए थे और आज माँ भवानी की कृपा से उन्हें जीवभूमि पर व्यावहारिक क्षेत्र में 'सर्व ब्रह्ममय जगत्' का ज्ञानबोध व दृष्टि पूर्णरूपेण प्राप्त हुई। उसी प्रकार व्यावहारिक क्षेत्र में शंकर में ब्रह्मात्म विज्ञान के परिपूर्ण विकास के लिए भवानीपति भगवान शंकर ने एक और अद्भुत लीला रची।

उस दिन शंकराचार्य प्रतिदिन की भाँति मणिकर्णिका घाट की ओर गंगास्नान को जा रहे थे, तभी उन्हें एक कुरूप व्यक्ति चार कुत्तों को साथ लिए उसी रास्ते में आता हुआ दिखाई पड़ा। जब वह शंकराचार्य के रास्ते में आकर खड़ा हो गया तब उन्होंने उससे कहा—''अरे भाई! तुम जरा जंजीर से बँधे हुए अपने कुत्तों को लेकर एक ओर खड़े हो जाओ और हमें आगे निकल जाने दो।'' पर वह व्यक्ति रास्ते से हटा नहीं। वह उसी रास्ते पर आगे-आगे जाता रहा।

इस पर शंकराचार्य ने फिर कहा—''अरे ओ भाई! तुम मार्ग से हट जाओ। हमें स्नानादि आवश्यक कार्यों के लिए देर हो रही है।'' ''महात्मन्! आप किसे हटने को कहते हो?''—उस व्यक्ति ने हँसते हुए संस्कृत भाषा में कहा। ''आप किसे हट जाने को कह रहे हैं, आत्मा को या देह को? आत्मा तो सर्वव्यापी है, निष्क्रिय और सतत शुद्ध स्वभाव है। यदि देह को हटाने को कह रहे हो तो वह तो जड़ है, फिर वह कैसे हट सकती है और तुम्हारी देह से किसी और की देह किस अंश से भिन्न है, यह भी तो बताओ। जीव और ब्रह्म की अभिन्नता और अद्वैत ब्रह्मतत्त्व में प्रतिष्ठित होने का मिथ्या अभिमान करते हो। तत्त्व दृष्टि से क्या ब्राह्मण और चांडाल में कोई भेद है? तत्त्व दृष्टि से क्या एक देह किसी दूसरी देह से भिन्न है। जल में प्रतिबिंबित सूर्य और सुरा में (शराब में) प्रतिबिंबित सूर्य में क्या कोई भेद है? क्या यही तुम्हारा ब्रह्मज्ञान है?''

उस व्यक्ति की ज्ञान भरी बातें सुनकर आचार्य शंकर अचंभित हुए, आश्चर्यचकित हुए, विस्मित हुए और लज्जित भी। उन्होंने सोचा, अवश्य ही यह देवलीला है। उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान भोलेनाथ की स्तुति करते हुए कहा—"हे प्रभु! आप सभी भूतों के प्रति समज्ञानी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापी हैं और मेरे गुरु हैं। मैं आपके चरणों में कोटिशः नमन करता हूँ।"

आचार्य शंकर ने तभी देखा कि सामने न तो वह व्यक्ति है और न ही उसके कुत्ते हैं। आचार्य शंकर ने देखा कि सूर्य एवं अग्नि के समान दिव्यपुरुष महादेव भगवान भोलेनाथ अपने हाथ में चारों वेद लिए उनके सम्मुख खड़े हैं। भगवान को साक्षात् अपने सम्मुख पाकर आचार्य शंकर का हृदय हर्ष और आनंद से भर गया और वे पुनः हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—"हे विभो, हे विश्वमूर्ते! मैं आपकी वंदना करता हूँ। मैं आपको बारंबार प्रणाम करता हूँ। हे चिदानंद मूर्ते! मैं आपकी शरण में हूँ।"

भगवान शंकर आचार्य शंकर की स्तुति से प्रसन्न होकर उनके सिर पर हाथ रखते हुए बोले—"वत्स! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। मैं तुमसे जगत् में वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा कराने की इच्छा रखता हूँ। तुम वेदांत की निर्दोष व्याख्या द्वारा भ्रामक मतवादों का खंडन करके व्यासकृत ब्रह्मसूत्र पर भाष्य की रचना करो। वेदांत का मुख्य तात्पर्य जो ब्रह्मज्ञान है उसकी प्रतिष्ठा करके वैदिक धर्म का सर्वसाधारण में प्रचार करो। जगत् के सर्वविध कल्याण के लिए ही तुमने मेरे अंश से जन्म ग्रहण किया है। जब तुम्हारा कार्य पूर्ण हो जाएगा, तब तुम मुझमें ही मिल जाओगे।"

यह कहते हुए भगवान भोलेनाथ अंतर्धान हो गए। आचार्य शंकर देवाधिदेव के दर्शन करके आनंद से भर गए। वे गंगास्नान कर शीघ्र ही अपने निवासस्थान पर आए, पर उनके कानों में अभी भी महादेव की देववाणी गूँज रही थी।

आचार्य शंकर ने सोचा कि ब्रह्मसूत्र की भाष्य रचना करने के लिए बदरिकाश्रम जाना ठीक रहेगा। यह विचार कर वह काशीधाम, भगवान विश्वनाथ एवं माँ अन्नपूर्णा को प्रणाम करके अपने शिष्यों सहित बदरिकाश्रम की ओर चल पड़े। कालांतर में भगवान शिव की उसी आज्ञा को पूर्ण करते हुए वे उन्हीं के धाम, केदारनाथ में शिवत्व में विलीन हो गए। ❑

चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक लाओत्से ने अपने शिष्य से कहा—"तुम्हें पता है कि मैं अपने जीवन में कभी किसी से पराजित नहीं हुआ।" शिष्य को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला—"पर आप तो बहुत छोटे व दुर्बल शरीर के हैं। ऐसे में आपको कैसे कभी किसी ने नहीं हराया?"

लाओत्से हँसा और बोला—"मैंने कभी जीतने की चाहत ही नहीं रखी। इसीलिए हारने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हुआ। संसार में सारी दौड़ पाने की है। इसीलिए लोग खोने की सोच से ही परेशान हो जाते हैं, परंतु जो भगवान ने दिया है उसी से संतुष्ट है तो उसके मन को न तो कोई चिंता परेशान करती है और न कोई बेचैनी उद्विग्न करती है।" शिष्य की समझ में आ गया कि अतृप्त कामनाएँ ही समस्त दुःखों का कारण हैं।

आत्मजयी से लोकजयी

देवपुरुष अपने 50 लाख शिष्य और करोड़ों अनुयायी छोड़कर गए हैं। इतना प्रभाव कैसे उत्पन्न किया जा सका, इसका रहस्य समझना हो तो उस एक शब्द से ही उद्घाटित किया जा सकता है अपने को अपने आदर्शों से प्रभावित, सहमत, संलग्न और तत्पर बनाकर उनने वह प्रभावशीलता पाई, जिसके आगे जो सामने आया, वह झुकता चला गया।

उनकी वाणी, लेखनी और प्रतिभा की अक्सर बहुत सराहना होती है और कहा जाता है कि इन त्रिविध अद्भुत सिद्धियों के आधार पर वे विशाल जनसमूह को प्रेरित करने की सफलता प्राप्त कर सके, पर वस्तुतः यही मूल्यांकन सही नहीं है। वक्ता, लेखक और प्रतिभाशाली व्यक्ति एक-से-एक बढ़कर संसार में पड़े हैं।

उनके कर्तृत्वों को लोगों ने कुतूहल की दृष्टि से देखा-सराहा तो है, पर प्रभावित कितने हुए इसका लेखा-जोखा लिया जाए तो सब कुछ खोखला ही दिखाई देगा। प्रतिभाशाली वक्ता, लेखक, गायक, नेता, अभिनेता, चित्रकार, कलाकार, गुणी, कुशल, रूपवान अपनी विभूतियों से लोगों का ध्यान तो आकर्षित कर लेते हैं व अपने काम का परिचय भी करा लेते हैं, पर देखा जाता है कि वे कुछ कर नहीं पाते।

दूसरों से कुछ कराने वाले को स्वयं कुछ करने वाला होना चाहिए। आदर्श की शिक्षा देने वाले को स्वयं आदर्शवादी होना चाहिए। श्रेष्ठता का मार्ग वह है, जिस पर खुद चलकर ही किसी को चलने की प्रेरणा दी जा सकती है।

उपदेश सरल है, पर उसे स्वयं हृदयंगम न करके दूसरों के सामने जीवंत उपदेश की तरह उपस्थित होना कठिन है। इस कठिनाई को जो पार कर सके, वही सिद्धपुरुष है। आत्मविजय की सिद्धि जिसने प्राप्त कर ली, उसके लिए लोकविजय का मार्ग कुछ कठिन नहीं रह जाता।

आत्मचिंतन, आत्मशोधन, आत्मनिर्माण और आत्मविकास की प्रक्रिया को संपन्न करते हुए गुरुदेव आत्मसाधना में निरंतर तत्पर रहे और इस तपश्चर्या का उन्होंने एक ही वरदान पाया— आत्मबल।

इसी आत्मबल की सहायता से इंद्रियजयी, मनोजयी, मृत्युंजय बन सके और अब अनाचार और अत्याचार के साम्राज्य को चुनौती देते हुए धरती पर स्वर्ग अवतरण करने वाले लोकजयी लोकनायकों की राह पर उसी संबल को लेकर चल रहे हैं।

गुरुवाक्य में विश्वास करना चाहिए। गुरु ही सच्चिदानंद हैं, सच्चिदानंद ही गुरु हैं, उनकी बात पर विश्वास करने से ही ईश्वरप्राप्ति होती है।

इस आत्मबल के धनी नरदेव की साधना भविष्य को दिशा देने में कैसे चमत्कार प्रस्तुत करती है, यह सब हमें धैर्यपूर्वक देखना चाहिए और प्रयत्न यह करना चाहिए कि इस महामानव की जीवनचर्या के साथ अपनी गतिविधियों का तालमेल बैठाते हुए हेय परिस्थितियों से ऊँचे उठकर महानता का कुछ प्रसाद प्राप्त कर सकने के लिए उनके द्वारा प्रदर्शित पथ के पथिक बनकर उस पर कुछ कदम तो आगे बढ़ा ही सकें। ❑

निराशा से आशा की ओर

निराशा जीवन का एक ऐसा सत्य है, जिससे इनसान जीवन में यदा-कदा रूबरू होता रहता है। निराशा के कुछ झोंके परिस्थितिजन्य होते हैं, जिनसे व्यक्ति परिस्थिति के हटते ही उबर जाता है, लेकिन निराशा के कुछ दौर मन:स्थितिजन्य होते हैं, जिनसे उबरने में समय लगता है, लेकिन जो भी हो निराशा का अंधकार भरा दौर जीवन को नरक बना देता है। जीवन का सुख-चैन, उत्साह-उमंग सब जैसे छिन जाते हैं और व्यक्ति एक दिशाहीन अँधेरी सुरंग में घुट-घुटकर जीने के लिए अभिशप्त हो जाता है।

निराशा एक अभिशाप है, मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है, जो जीवन को घुन की तरह चाटकर खोखला कर देती है। निराशा में जकड़ा हुआ मन-मस्तिष्क निषेधात्मक प्रवृत्तियों का अड्डा बन जाता है, जिससे क्षोभ, क्रोध, आवेश, हताशा जैसे अनेकों विकार उत्पन्न हो जाते हैं। बात-बात पर चिढ़ना, कुढ़ना और कुंठित होना ऐसे में व्यक्ति का स्वभाव बन जाता है। निराश व्यक्ति के पास कोई बैठना नहीं चाहता है और न कोई बात करना चाहता है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी बैठता है, वहीं संपूर्ण वातावरण विषादपूर्ण बना देता है। वस्तुत: निराशा एक तरह से छूत की बीमारी की तरह है। ऐसे व्यक्ति से हर कोई बचने की कोशिश करता है।

निराशा में व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों को भूल बैठता है व इनके प्रति सजग-सचेष्ट नहीं रह पाता। उसका जीवन लक्ष्यविहीन, दिशाविहीन हो जाता है। उसकी गतिशीलता कुंठित हो जाती है और वह भाग्यवादी बन जाता है। पुरुषार्थ से अधिक भाग्य पर विश्वास करने लगता है। सोचता है कि जो भाग्य में लिखा होगा, वही तो होगा। इस तरह श्रम से अधिक भाग्य की अदृश्य शक्ति को अपना प्रेरक मान बैठता है। पुरुषार्थ के बल पर अपने भाग्य-निर्माण की बात को भूलकर वह एक हताश, निराश व उदासीन जीवन जीता है।

निराश व्यक्ति आत्मसमीक्षा व निरीक्षण की क्षमता भी खो बैठता है। वह अपनी गलतियों व कमियों को नहीं देख पाता, बल्कि हर असफलता, हार, हानि व दुर्योग में दूसरों को ही दोषी करार देता है व परदोषारोपण की भूल कर बैठता है। उसे दूसरों में दोष, दुर्गुण व बुराइयाँ ही दिखते हैं। उनके उज्ज्वल पहलुओं व अपनी कमियों को देखने में वह असक्षम हो जाता है। इस तरह जीवन को समग्र रूप में न देख पाना एक निराश व्यक्ति की बड़ी खामी रहती है, जो उसे जीवन के आंतरिक और बाहरी, दोहरे मोर्चों पर विफल बनाती है। ऐसे में निराशा एक ऐसी दलदल साबित होती है, जिसमें फँसे हुए व्यक्ति को दु:ख, पश्चात्ताप, घुटन व यंत्रणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।

इस तरह निराशा सबसे भयंकर बीमारी है, यह जिसको आक्रांत कर देती है, तो उसके जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है और इसका कारण व्यक्ति स्वयं ही होता है। भ्रामक धारणा के आधार पर गलत निर्णयों के कारण वह अपने ही हाथों से

अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है। हर भूल के साथ निराशा का कुहासा और गहराता जाता है और निराशा एक ऐसा भँवर साबित होती है, जो अंततः जीवन की नैया को ही डुबो देती है। मालूम हो कि विश्व में 90 प्रतिशत आत्महत्याओं का कारण निराशा ही रहती है।

निराशा कई कारणों से पनप सकती है। शरीर की रुग्ण अवस्था इसका एक कारण हो सकती है। शरीर में रोग के कारण मानसिक शिथिलता आ सकती है। प्रायः किसी असाध्य रोग के कारण भी यह स्थिति बनती है। अतीत की गलतियाँ, अपमान, हानि, पीड़ा का चिंतन आदि भी निराशा को निमंत्रण देते हैं।

अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत न कर पाना भी निराशा को जन्म देता है। किसी ने सही कहा है कि क्रिया में परिणत न होने वाले विचार रोग बन जाते हैं, जो आगे चलकर व्यक्ति को निराशा से घेर देते हैं। निराशा व्यक्ति की सारी शक्तियों को कुंद कर देती है।

अपने यथार्थ को स्वीकार न कर पाना निराशा का एक बड़ा कारण रहता है; जिसके कारण व्यक्ति स्वयं से व दूसरों से बढ़ी-चढ़ी एवं अव्यवहारिक अपेक्षाएँ लगाए बैठता है, जिनके पूरा न होने पर फिर निराश होता है और कुढ़ता फिरता है। जीवन में उत्साह व साहस की कमी इसी से जुड़ी हुई है, जिसके चलते व्यक्ति संघर्ष से बचता है और संघर्ष के क्षणों में सरलता से हार मान लेता है, जो मनुष्य की सबसे बड़ी भूल रहती है। इस तरह निराशा एक तरह से पलायन से उपजी स्थिति होती है, जिसके चलते व्यक्ति जीवन-संग्राम से भयभीत होकर भागा-भागा फिरता है।

अपने बारे में अत्यधिक सोच भी निराशा का कारण बनती है। निराशा वहाँ पनपती है, जहाँ चिंतन स्वार्थप्रधान रहता है। ऐसे में व्यक्ति अपने बारे में बहुत अधिक सोचता है, दूसरों के बारे में सोचने की उसे फुरसत ही नहीं रहती। अपनी बढ़ी-चढ़ी इच्छाओं, कामनाओं व महत्त्वाकांक्षाओं के सामने उसे आस-पास के लोगों के दुःख-दरद और कष्ट-अभाव आदि नहीं दिखते। यदि इन पर एक नजर डालता, तो शायद उसकी निराशा का भाव हलका हो जाता।

निराशा का मूल कारण रहता है— आत्मविश्वास की कमी। आत्मविश्वास के अभाव में व्यक्ति जीवन में वह साहसिक पहल नहीं कर पाता, जो उसे मनचाही सफलता दिला सके। कहना न होगा कि निराशा का जन्म अधिकतर असफलताओं से हुआ करता है। इस कारण व्यक्ति हिम्मत हार बैठता है। साहस के हारते ही निर्णय शक्ति समाप्त हो जाती है। मन में शंका और भय पैदा होते हैं। मन की अराजकता से शक्तियों का पतन होता है और प्रतिभा कुंद पड़ जाती है।

ईश्वर पर विश्वास का अभाव भी निराशा का कारण बनता है। निराश व्यक्ति ईश्वर पर विश्वास नहीं कर पाता, इसलिए नास्तिक बन जाता है। अपने पूर्ण प्रयास के बाद भी सफलता के मिलने या किसी अप्रत्याशित विपत्ति का पहाड़ गिरने पर नास्तिक व्यक्ति ईश्वर की न्याय-व्यवस्था व उसके कर्मफल विधान को समझ नहीं पाता, उस पर विश्वास नहीं कर पाता। इस तरह ईश्वर से भिन्नता निराशा का कारण बनती है।

कुल मिलाकर निराशा जीवन का बड़ा अवरोध, उलझन व समस्या है, एक अभिशाप है, जो हमारे पुरुषार्थ को पंगु बना देती है। यह एक तरह का पाप है, अपराध है, जो व्यक्ति के आत्मिक उत्कर्ष व भौतिक प्रगति को निष्फल

बना देती है व उसके प्रयत्न में जड़ता की जंग लगा देती है।

अतः प्रगति के इस भयानक दुश्मन को दूर करने के लिए हमें सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए; क्योंकि जीवन एक साहसपूर्ण अभियान है, जिसमें आगे बढ़ने के लिए हृदय में उत्साह का बल और प्रयास में निरंतरता का होना अभीष्ट रहता है।

व्यक्ति किस प्रकार उत्साही बने, उसमें सदैव आशा का संचार होता रहे, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इसके लिए सबसे पहले अपना यथार्थ मूल्यांकन अभीष्ट है, फिर छोटे-छोटे कदम उठाए जाएँ, इसके साथ छोटी-छोटी सफलताएँ विश्वास को पुष्ट करती जाएँगी। अपने पुरुषार्थ के साथ ईश्वर के विधान पर पूरा विश्वास करें, जिसमें कहीं भी अन्याय जैसी कोई बात नहीं। इसमें देर हो सकती है, पर अंधेर नहीं। इस तरह अपना श्रेष्ठतम प्रयास-पुरुषार्थ करते रहें व शेष ईश्वर पर छोड़ दें। जो भी होगा, वह श्रेष्ठतम ही होगा, इसके प्रति आश्वस्त रहें। ❑

भगवान बुद्ध एक गाँव में उपदेश दे रहे थे। सभा में एक उद्दंड व्यक्ति भी बैठा था, वह सभा रोककर खड़ा हुआ और भगवान को बहुत-सी गालियाँ देने लगा। भगवान बुद्ध ने बिना किसी प्रतिकार के उसकी सारी बातें सुनीं, पर कोई उत्तर नहीं दिया। उन्हें भड़कते न देख वह व्यक्ति क्रोध से उफन पड़ा और उन्हें और भी कटुवचन बोलने लगा, पर बुद्ध निर्विकार भाव से उसकी बातें सुनते रहे और शांत बैठे रहे। अगले दिन दूसरे गाँव को निकल गए, जब उस व्यक्ति को अपने किए का भान हुआ तो वह ग्लानि से भर उठा।

भगवान बुद्ध से क्षमा माँगने के उद्देश्य से वह उनको ढूँढ़ता हुआ दूसरे गाँव जा पहुँचा। वहाँ भगवान बुद्ध को देखते ही वह उनके चरणों में गिर पड़ा और उनसे क्षमा माँगने लगा तो भगवान बुद्ध बोले—"तुम कौन हो बंधु! किस कारण क्षमा माँग रहे हो?" वह व्यक्ति आश्चर्य से बोला—"भगवन्! आप मुझे भूल गए। मैंने ही तो कल आपको भला-बुरा कहा था।" भगवान बुद्ध बोले—"तात्! मैं तो कल को कल ही पीछे छोड़ चुका हूँ, आज तो मैं आज में प्रवेश कर गया हूँ। तुम भी अब कल की बात भूलकर वर्तमान में आ जाओ। तुमने अपने गलत कार्य के लिए क्षमा माँगी तो तुम वैसे ही निर्मल हो गए हो। अब इसी निर्मल मन से जीवन को नई सोच के साथ आरंभ करो, यही तुम्हें स्थायी शांति प्रदान करेगा।" महापुरुषों के मन में राग-विराग, मान-अपमान, प्रतिवाद-प्रतिकार की भावना नहीं होती।

भक्त का भगवान में विलय

श्यामाचरण जी एक उच्चकोटि के वैष्णव भक्त थे। बचपन से ही वे भगवान श्रीकृष्ण की मनोहर छवि के प्रति विशेष रूप से आकर्षित थे। वे एक गृहस्थ भक्त थे। वे अपनी धर्मपरायणा पत्नी के साथ भगवद्भक्ति किया करते थे। उनका घर क्या था, मानो एक आश्रम ही था। घर की पूरी साफ-सफाई होती थी। घर के बाहर लगे हुए चमेली, गेंदा, गुलाब, रातरानी आदि पुष्पों की सुगंध से उनका घर महका करता था।

घर में एक काली गाय थी। गोसेवा भी उनकी भगवद्भक्ति का ही हिस्सा था। पति-पत्नी दोनों ब्राह्ममुहूर्त में ही उठकर यमुना जी में स्नान करते और घर आकर भगवान के श्रीविग्रह की विधिपूर्वक पूजा कर गायत्री महामंत्र का जप करते व उसके पश्चात 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र का जप करते हुए भगवान श्रीकृष्ण की मनोहर छवि का अपने हृदय में ध्यान किया करते।

उनकी पत्नी नित्य गौ के गोबर से आँगन को लीपा करती थी। उसी आँगन में बैठकर वे ध्यान करने के बाद यज्ञ करते जिसमें वे गायत्री मंत्र, महामृत्युंजयमंत्र व 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र के साथ विशेष आहुतियाँ प्रदान करते। तत्पश्चात दोनों गीता, श्रीमद्भागवतमहापुराण, संतों व भक्तों से संबंधित ग्रंथों का स्वाध्याय करते तथा घर के आस-पास लगे फलदार वृक्षों से फल तोड़कर फलाहार करते। फलाहार के बाद श्यामाचरण जी अपने खेतों में काम करने चले जाते।

वे फिर दोपहर में घर लौटकर भोजन में सलाद के साथ थोड़ी मात्रा में चावल या रोटी लेते। फिर सायं 5 बजे स्नान कर संध्यावंदन करते। तत्पश्चात सायं 6 बजे दुग्धपान के अलावा रात्रि में कोई आहार नहीं लेते। रात्रि 9 बजे तक वे शयन के लिए चले जाते और 3 बजे उठ जाया करते। इस प्रकार वे अपनी आध्यात्मिक दिनचर्या पूरी करते। साथ ही उनके घर पर जो भी संत, फकीर, अतिथि आते उनकी वे पति-पत्नी स्वयं आवभगत करते।

वे यथासंभव दीन-दु:खियों की धन, अन्न व वस्त्र से सेवा किया करते। उनका एक पुत्र था, जो अब पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ा हो चुका था। अपने पुत्र की शादी कर देने के बाद वे पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त होकर जन-जन के बीच जाकर ज्ञान, कर्म और भक्ति का उपदेश करने लगे। उसी क्रम में वे यमुनापुर गाँव में भगवद्उपदेश करने पहुँचे। उनके अमृत उपदेश को सुनने को वहाँ हजारों लोग बैठे थे।

श्री श्यामाचरण जी ने उपदेश देते हुए कहा— "धर्मानुरागी भाइयो व बहनो! हमारा यह देवदुर्लभ मानवशरीर पशुवत् जीवन जीने के लिए नहीं, बल्कि देवता बनने व देवता की तरह जीवन जीने के लिए बना है। सिर्फ पेट, परिवार व प्रजनन के लिए जीना पशुवत् जीवन है, पर परोपकारमय जीवन जीना ही दिव्य जीवन है।

"हमारा यह मानव शरीर परमात्मा की प्राप्ति व अनुभूति के लिए मिला है, अस्तु हमें पारिवारिक व सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के साथ-साथ नित्य भगवद्उपासना, भगवद्भक्ति, भगवद्ध्यान भी करते रहना चाहिए, जिससे हमारे मानव जीवन का जो मूल प्रयोजन है, वह पूरा हो सके।" वे बोले—"मनुष्य होकर भी सिर्फ पेट के लिए जीना, परिवार के लिए जीना और इस जीवन को समाप्त

कर लेना, भला यह भी कोई जीवन है। ऐसी जिंदगी तो हम पशु-पक्षी आदि योनियों में भी जी चुके हैं। फिर मनुष्य शरीर पाकर भी हम ऐसी निकृष्ट जिंदगी क्यों जिएँ?

"मनुष्य योनि भोग योनि नहीं, बल्कि कर्म योनि है, इसलिए श्रेष्ठ कर्म करते हुए हमें इस जीवन को खुशहाल बनाने के साथ प्रभुप्राप्ति के लिए प्रयास-अभ्यास करते रहना चाहिए। अत: समझदारी इसी में है कि हम ऐसी जिंदगी जिएँ जिससे हम धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष आदि पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति कर सकें और अपने जीवन को सफल बना सकें।"

फिर उन्होंने आगे कहा—"भौतिक सुख क्षणभंगुर है, पर आत्मिक सुख स्थायी है, इसलिए निरंतर भगवद्भक्ति करते हुए जब व्यक्ति को आत्मिक सुख की अनुभूति होने लगती है तब वह सदा शांत, प्रफुल्लित, उल्लसित व आनंदित रहता है, जबकि सिर्फ भौतिक सुख-साधन जुटाने वाले लोग दु:खी रहते हैं।"

संत श्यामाचरण जी उन लोगों से बोले—"आप लोग इसीलिए भगवद्भक्ति करो; क्योंकि इससे लाभ-ही-लाभ है और हानि कुछ भी नहीं। भगवद्भक्ति से भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।

"हाँ! एक बात का आप सभी हमेशा ध्यान रखना कि धन अर्जित करना अच्छा है, पर जो धन संत-सेवा, भगवद्सेवा व परोपकार में नहीं लगता वह किसी दूसरे प्रकार से नष्ट हो जाता है। जैसे कूप से जल के निकलते रहने पर जल शुद्ध रहता है, उसी प्रकार गृहस्थ का धन यदि परोपकार व भगवद्सेवा में लगता है तो वह धन शुद्ध रहता है अन्यथा दूषित हो जाता है और दूषित धन से व्यक्ति को कभी सुख प्राप्त नहीं होता।

"अत: धन को परोपकार व भगवद्सेवा में अवश्य लगाना चाहिए, दान करते रहना चाहिए। इससे आप लोगों का परम कल्याण होगा। अनीति व बेईमानीपूर्वक अर्जित या प्राप्त धन भी दूषित होता है, जो हमें सुख नहीं, बल्कि दु:ख देता है; इसलिए हमेशा ईमानदारीपूर्वक ही धन अर्जित करना चाहिए।

वे आगे बोले—"एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपने घर व आस-पास के वातावरण को स्वच्छ व पवित्र रखो। यह पूरा विश्व ब्रह्मांड ही भगवान का घर है, इसलिए जहाँ भी रहो सफाई व स्वच्छता का सदैव ध्यान रखो। अपने घर को मंदिर की तरह, आश्रम की तरह बनाए रखो। घर में भगवान की स्थापना कर उनकी नित्य आराधना करो, उपासना करो। सत्साहित्य का स्वाध्याय किया करो, जिससे तुम्हें सद्ज्ञान की प्राप्ति हो सके।

"भगवान सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हैं, इसलिए जहाँ भी रहो, जिस कार्य में रहो वहाँ भगवान की उपस्थिति को मानते हुए अपने कार्य को ईमानदारीपूर्वक करते रहो। बुरे कर्मों से दूर रहो और सदैव अच्छे कर्म किया करो। नशे से हमेशा दूर रहो; क्योंकि नशासेवन करने से तन, मन, धन तीनों की हानि होती है। नशा करने से मनुष्य विवेक खो देता है और बुरे कार्यों में लग जाता है।"

इस प्रकार अमृत उपदेश देते हुए श्री श्यामाचरण जी वहाँ से विदा हुए। लोगों ने अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें विदा किया और साथ ही उनके बताए मार्ग पर चलने का संकल्प भी लिया। श्यामाचरण जी जब तक रहे, अपनी आध्यात्मिक जीवनचर्या के साथ जनकल्याण के रूप में भगवत्कार्य करते रहे।

अंत में शरद पूर्णिमा की रात्रि में भगवान की भक्ति में तन्मय होकर उन्होंने शरीर त्याग दिया और उनकी आत्मा, परमात्मा में हमेशा-हमेशा के लिए विलीन हो गई; मानो सरिता सिंधु में मिलकर स्वयं भी सिंधु हो गई। भक्त का भगवान में विलय हो गया। ❑

महाकवि कालिदास का ज्योतिष दर्शन

महाकवि कालिदास की विद्वत्ता और बहुमुखी प्रतिभा ने विश्व के समस्त विद्वानों को आकर्षित किया है। संस्कृत से लेकर अन्य भाषाओं के विद्वान भी उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। उनके ग्रंथों में चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, संगीत, दर्शन, इतिहास, भूगोल एवं ज्योतिष के साथ-साथ अन्यान्य विषयों का भी समावेश मिलता है।

महाकवि कालिदास ने कई महाकाव्यों की रचना की, जिनमें सात प्रसिद्ध हैं—रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार, अभिज्ञानशाकुंतलम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम्। इन ग्रंथों में यत्र-तत्र ज्योतिषीय प्रयोग महाकवि के ज्योतिष प्रेम को प्रकट करते हैं। महाकवि ने काव्य रचना के साथ जहाँ आवश्यकता हुई, वहाँ स्पष्ट रूप से ज्योतिष संदर्भों को समायोजित किया।

अपने ग्रंथों में महाकवि ने नक्षत्र, तारा, तिथि, मुहूर्त, अयन, ग्रह दशा, रत्न, ग्रहशांति, शकुन, यात्रा, स्वप्न, राजयोग, ग्रहों की उच्चता, नीचता, वक्रत्व, मार्गत्व, ग्रहण, संक्रांति, ग्रहों का योग, काल विधान, पुनर्जन्म, भवितव्यता आदि का प्रसंगवश वर्णन किया है। अभिज्ञानशाकुंतलम् के मंगलाचरण में भगवान शंकर की अष्टमूर्तियों में सूर्य-चंद्रमारूपी मूर्ति का उल्लेख करते हुए **ये द्वेकालं विधत्तः** कहकर संपूर्ण काल विधान जो ज्योतिष शास्त्र का मूल उद्देश्य है—उसको उन्होंने स्पष्ट कर दिया।

वस्तुतः तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण जो पंचांग हैं, सूर्य-चंद्रमा पर ही आधारित हैं। दिवा-रात्रि ही नहीं, अपितु सृष्टि से लेकर प्रलयपर्यंत सूर्य-चंद्रमा ही काल का विधान कर रहे हैं। ये दोनों ज्योतिषशास्त्र के मेरुदंड हैं। इनमें भी चंद्रमा, सूर्य से ही पोषित हो रहा (प्रकाशित हो रहा है) का स्पष्ट उल्लेख रघुवंश के तृतीय सर्ग में है—'**पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनु प्रवेशादिव बालचन्द्रमाः।**'

किसी भी जातक की कुंडली में यदि पाँच ग्रह निर्मल होकर अपने उच्च स्थान में स्थित हों, तो वह जातक निश्चित ही चक्रवर्ती सम्राट होता है। ज्योतिष शास्त्र के इस कथन को महाराजा रघु के जन्मकाल की ग्रहस्थिति (कुंडली) से महाकवि ने प्रमाणित किया है। ग्रहों की प्रतिकूलता में ग्रह शांति अवश्य ही लाभदायी होती है, तभी तो महर्षि कण्व शकुंतला के प्रतिकूल ग्रह-शांति हेतु सोमतीर्थ जाते हैं—

'**दैवमस्याः प्रतिकूलम् शमयितुं सोमतीर्थगतः।**'

विवाह में शुभ मुहूर्त आवश्यक होता है। हिमालय-पुत्री पार्वती से भगवान शिव का विवाह निश्चित हो गया, तब मांगलिक कृत्य जो विवाह से पूर्व होते हैं, उनको मैना ने मैत्र मुहूर्त तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में कराया। सप्तर्षिगणों से विवाह की तिथि पूछकर हिमालय ने स्वाति नक्षत्र में विवाह का दिन निश्चित किया। विवाह का श्रेष्ठ नक्षत्र स्वामी ज्योतिर्विदों में मान्य है। इतना ही नहीं, वैवाहिक लग्न में सप्तम स्थान सर्वथा शुद्ध होना चाहिए।

विवाह के पश्चात वधू प्रवेश तथा द्विरागमन में शुक्र सन्मुख प्रतिकूल रहता है। इसका उल्लेख कुमारसंभव के तीसरे सर्ग में उन्होंने किया है। मालविकाग्निमित्रम् में विदूषक राजा से कहता

है, चलिए हम लोग निकल चलें; कहीं मंगलग्रह के समान वक्र गति से चलता हुआ वह पुनः पिछली राशि पर न आ जाए। पुनः कहता है कि हे राजन्! ज्योतिषियों ने कहा है कि इस समय आपका नक्षत्र प्रतिकूल चल रहा है। दशाएँ अनुकूल एवं प्रतिकूल होती रहती हैं। दोनों में सम रहना चाहिए।

सूर्य की संक्रांति तथा अयन की चर्चा रघुवंश के नवम सर्ग में दशरथ के मृगया प्रसंग में द्रष्टव्य है, जहाँ वर्णन है कि महाराज दशरथ आखेट करते हुए सुदूर दक्षिण दिशा में चले गए। उस दिन उत्तरायण की स्थिति बन रही थी। सूर्य उत्तर की ओर मुड़ना चाह रहे थे, उसी समय महाराजा दशरथ ने भी अपना रथ उत्तर की ओर मोड़ दिया।

नक्षत्रों में अश्विनी, कृत्तिका, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा का उल्लेख करते हुए किस नक्षत्र में कितने तारे हैं, उसका वैज्ञानिक वर्णन उन्होंने किया है। तिथियों में प्रतिपदा, अमावस्या, पूर्णिमा के साथ एकादशी का भी उल्लेख है। मेघदूत के उत्तर भाग में प्रबोधिनी (देवोत्थान) एकादशी का उल्लेख करते हुए उस दिन यक्ष के शाप निवृत्ति की बात कही है।

यही कारण है कि संस्कृत के अनेक विद्वानों ने इसे ही कालिदास की जन्मतिथि के रूप में स्वीकार किया। मेघों के निर्माण में धुआँ, प्रकाश, जल तथा वायु कारण हैं, इसका उल्लेख उनकी वैज्ञानिक दृष्टि की ओर संकेत करता है। आषाढ़ माह में वर्षारंभ का उल्लेख मेघदूत के दूसरे श्लोक में कालिदास ने किया है।

वर्षा के पश्चात अगस्त्य तारे का उदय होता है, इसका प्रामाणिक ज्योतिषीय वर्णन कालिदास ने किया है। कभी वर्षा के समय यदि क्रूर ग्रह वर्षाकारक ग्रहों के मध्य आ जाए तो वर्षा नहीं होती, अकाल पड़ जाता है, इसका उल्लेख रघुवंश में है। दो-तीन ग्रहों के आपस में युति होने से परिणाम सुखद होता है, इसका उल्लेख भी है। अगस्फुरण से होने वाले परिणामों का भी यत्र-तत्र वर्णन है।

राजा दुष्यंत कण्व के आश्रम में प्रवेश करना चाहते हैं, उसी समय उनकी दाहिनी भुजा फड़क उठती है, इसका परिणाम ज्योतिष शास्त्र में पत्नीलाभ कहा गया है। राजा विचार करते हैं कि भला आश्रम में यह कैसे संभव होगा, तथापि भवितव्यता कहीं भी होकर रहती है। इस प्रकार वे भवितव्यता में अपना अटल विश्वास प्रकट करते हैं। रघुवंश के चौदहवें सर्ग में सीता जी का दाहिना नेत्र फड़कता है—इसे अपशकुन मान वे डर जाती हैं। स्वप्नदर्शन का भी फल होता है, इसका वर्णन रघुवंश महाकाव्य में प्राप्त होता है।

अपशकुनों का विस्तृत वर्णन कुमारसंभव महाकाव्य में प्राप्त होता है। जब तारकासुर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है, उस समय गिद्धों का झुंड दैत्य सेनाओं के समीप आकर ऊपर मँडराने लगता है, भयंकर आँधी चलने लगती है, आकाशमंडल जलते हुए अंगारों, रुधिरों और हड्डियों के साथ बरसने लगता है तथा दिशाएँ जलती हुई प्रतीत होने लगती हैं, ऐसा लगता है जैसे दिशाएँ धुआँ उगल रही हैं। वर्णन है कि तब हाथी लड़खड़ाने लगे, घोड़े जमीन पर गिरने लगे, सेनाओं में कंपन होने लगा, कुत्ते इकट्ठे होकर मुख को ऊपर करके सूर्य से दृष्टि लगाकर कान के परदे को फोड़ने वाली भयंकर आवाज में रोने लगे।

ऐसे अनेक अपशकुनों को देखकर भी तारकासुर ने प्रस्थान किया और उसका परिणाम हुआ कि वह युद्ध में मारा गया। रघुवंश में बारहवें सर्ग में जब खर-दूषण राम से युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं तो वे शूर्पनखा को आगे करके चले।

उसकी नाक कटी थी, अतः यही अपशकुन हो गया और खर-दूषण का विनाश हुआ।

रत्नों का भी प्रभाव मानव पर पड़ता है, इसके अनेक उदाहरण महाकवि कालिदास ने दिए हैं। सूर्यकांत मणि सूर्य की किरणों के स्पर्श से आग उगलती है, जबकि चंद्रकांत मणि चंद्रकिरणों के स्पर्श से जल निस्सृत करती है। रत्न विद्ध होने से कम प्रभावी होते हैं, जैसा कि शकुंतला के सौंदर्य वर्णन में अनाविद्धरत्न कहा है। पन्ना, माणिक्य, पद्मराज, पुखराज आदि रत्नों का यथास्थान प्रसंगवश उल्लेख आया है। इन ज्योतिषीय वर्णनों को देखकर कहा जा सकता है कि महाकवि कालिदास जितने काव्य मर्मज्ञ थे, उतने ही ज्योतिष मर्मज्ञ भी। हों भी क्यों न, उन पर भगवान महाकालेश्वर एवं भगवती महाकाली जगदंबा का वरदहस्त जो था।

यह स्पष्ट है कि महाकवि कालिदास का ज्योतिष ज्ञान अत्यंत उन्नत एवं समृद्ध था, जो आज भी प्रासंगिक है। ❑

अब्दुल रहीम खानखाना प्रसिद्ध कवि थे, पर साथ ही एक नेकदिल इनसान भी थे। जकात (दान) में उनका बहुत भरोसा था। वे प्रतिदिन गरीबों और याचकों को घर के बाहर दान दिया करते थे, पर उनका नियम था कि दान देते समय अपनी नजरें झुका लिया करते थे और झुकी हुई नजरों से ही दान दिया करते थे। एक बार प्रसिद्ध कवि गंग उनसे मिलने आए तो उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति कई बार रहीम साहब से दान ले चुका है, पर उनकी नजरें झुकी होने का फायदा उठाकर बार-बार कतार में लग जाता है और दान लेने लग जाता है।

यह देखकर कवि गंग खानखाना जी से कविता में बोले—

सीखी कहाँ से नवाबजूं, ऐसी देनी देन?
ज्यों-ज्यों कर ऊँचे चढ़ें, त्यों-त्यों नीचे नैन?

नवाब साहब! दान देने का ऐसा तरीका भला आपने कहाँ से सीखा? जैसे-जैसे आपका हाथ देने के लिए ऊपर चढ़ रहा है, वैसे-वैसे आपकी आँखें भी नीचे को झुकती जा रही हैं। कवि गंग के प्रश्न का उत्तर भी खानखाना जी ने कविता में ही दिया—

देनहार कोई और है, जो देता दिन रैन।
लोग भरम मो पे करें, ताते नीचे नैन॥

असल में देने वाला तो कोई और है (खुदा), जो रात-दिन सबको कुछ-न-कुछ देता है, पर लोग व्यर्थ ही हमें दाता समझ बैठते हैं। इसलिए नजरें झुकाकर दान दे रहा हूँ। दान देने का सच्चा अर्थ अहंकारशून्यता और प्रभु के प्रति समर्पण से ही निकलता है।

गायत्री तीर्थ : जहाँ लोग तर जाते हैं

विगत अंक में आपने पढ़ा कि सन् 1979 में गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना का संकल्प अवतरित हुआ। आरंभ में 24 की संख्या से बढ़ते 240 और फिर यह संख्या 2400 से भी अधिक हो गई थी। प्रज्ञावतार के लीला केंद्रों की गणना करते-करते गायत्री परिजन हतप्रभ थे। परमपूज्य गुरुदेव के दैवी संकल्प का मूर्तस्वरूप संकल्प के उजागर होने के कुछ ही समय पश्चात सभी के समक्ष दृश्यमान था। जिन्हें इस परियोजना की सफलता में रत्तीभर भी संशय रहा था उन्होंने समर्थ गुरुसत्ता की अपरमित सामर्थ्य के न केवल साक्षात् दर्शन किए, वरन उस विराट संकल्प में स्वयं की सहभागिता को सुनिश्चित करने हेतु व्याकुल भी हो उठे। दैवी प्रेरणाओं से उपजे संकल्प को आकार देने का कार्य पूज्यवर ने स्वयं अपने हाथों में लिया। प्रज्ञा परिजनों को अपनी अकिंचन भूमिका निभाने का सुअवसर पूज्य गुरुदेव ने भगवान श्रीकृष्ण की भाँति ग्वाल-बालों को अपनी-अपनी लाठी लगाकर गोवर्धन पर्वत को उठा सकने में श्रेय का भागी बनाने के रूप में दिया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

गुरुदेव सन् 1982 तक गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना, प्राण-प्रतिष्ठा के लिए गए। उन्नीस स्थानों—शक्तिपीठों में जाने के बाद उन्होंने प्रवास रोक दिया। जहाँ पहले स्वीकृति दी जा चुकी थी, कार्यक्रम भी तय हो गए थे और तैयारियाँ चल रही थीं, वहाँ सूचना भेज दी गई कि गुरुदेव अब नहीं आएँगे। कारण कोई नहीं बताया गया था।

सुधी परिजनों ने समझ लिया कि गुरुदेव की मार्गदर्शक सत्ता का निर्देश होगा। प्रवास कार्यक्रम अचानक स्थगित हुए हैं, इसका अर्थ है कि नए चरण का निर्धारण हुआ है। वह निर्धारण अधिक महत्त्वपूर्ण होगा।

शांतिकुंज में निवास कर रहे कार्यकर्त्ताओं को भी इस निर्णय का पता चला तो उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। भाव शरीर से गुरुदेव की भक्ति करने वाले भक्तिमार्गी कार्यकर्त्ताओं को तो खुशी ही हुई कि गुरुदेव अब पहले की तरह नित्य उपलब्ध रहेंगे।

प्रवास कार्यक्रम लगभग डेढ़ वर्ष तक चले थे। गुरुदेव ज्यादा समय बाहर नहीं रहे, पर भावुक-मना परिजनों के लिए तो यह विछोह भी भारी पड़ रहा था। इन कार्यकर्त्ताओं के साथ आश्रम के बच्चे भी प्रसन्न हुए।

वे गुरुदेव के रूप में अपने पितामह को देखते थे। उन्हें पता चला कि गुरुदेव अब बाहर नहीं जाएँगे तो उन्हें—गुरुदेव को प्रणाम करने उनके पास दौड़े गए। प्रणाम किया और कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। गुरुदेव ने उनकी पीठ थपथपाई और कुछ टॉफियाँ उनकी हथेली पर रख दीं। उनकी भावनाओं को मान्यता देते हुए कहा—"जाओ अब पढ़ो और खेलो।"

उसी दिन अंतरंग गोष्ठी में प्रवास संबंधी घोषणा के बाद गुरुदेव ने कहा कि शक्तिपीठों का विस्तार होना है। जहाँ बड़ी स्थापनाएँ नहीं हो सकेंगी, गायत्री माता की प्रतिमा नहीं स्थापित की जा सकेगी, वहाँ गायत्री माता के चित्र स्थापित किए जाएँगे, संभव हुआ तो छोटी प्रतिमाएँ लगेंगी।

वे संस्थान प्रज्ञापीठ कहलाएँगे और जहाँ यह भी संभव नहीं होगा, वहाँ चरणपीठ बनाए जाएँगे। उन स्थानों पर एक शिला स्थापित की जाएगी। चार वर्ग फुट की इस शिला पर गायत्री माता के चरण खुदे होंगे।

इन स्थापनाओं का उद्‌देश्य छोटे-छोटे कस्बों और गाँवों में भी गायत्री चेतना का विस्तार होगा। गायत्री माता विश्व-ब्रह्मांड को आलोड़ित करने वाली महाशक्ति के साथ लोकदेवता के रूप में भी अवतरित होने की भूमिका रहेगी।

संध्या समय गुरुदेव ने अपने एक वरिष्ठ सहयोगी से कहा—"आकाश में एक ही सूर्य है और एक ही चंद्रमा। सागर, नदी, तालाब और झील में दोनों का एक-एक प्रतिबिंब ही होता है न, लेकिन मनुष्य और अन्य प्राणियों के चित्त में वह कई रूपों में झलकता है।

"गायत्री चेतना को भी इसी तरह विभिन्न रूपों में व्यक्त होना है।" गुरुदेव यह सब कह रहे थे, लेकिन उन कार्यकर्त्ता का मन किन्हीं और विषयों में भी चला जाता। लगता था भीतर कोई और मंथन चल रहा है।

गुरुदेव ने उन कार्यकर्त्ता की मन:स्थिति ताड़ ली और पूछा—"बेटा तुम्हारा मन कहीं और है। अपनी ये बातें तो पीछे भी होती रहेंगी। तुम उन बातों को पूछो, जो तुम्हें मथे जा रही हैं।"

"मेरा मन आपके पास ही है गुरुदेव।"—उन कार्यकर्त्ता ने कहा, फिर स्वगत ही बोला—"गुरुदेव आपका आहार दिनोंदिन अल्प होता जा रहा है। कई बार तो लगता है कि आप कुछ भी नहीं लेते। कैसे शरीर चलता है?"

गुरुदेव प्रश्न सुनकर थोड़े रुके। कुछ कहें इसके पहले ही उन कार्यकर्त्ता ने जैसे बच्चों की तरह हठ किया—"यह मत कहना गुरुदेव कि योगियों को आहार की जरूरत नहीं पड़ती। बिना खाए भी उनका काम चल जाता है।"

उत्तर के लिए यह सीमा बाँध देने के बाद गुरुदेव की मुस्कराहट हलकी-सी हँसी में खिल उठी। फिर वे गंभीर हुए और बोले—"तुम शरीर विज्ञान या चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से पूछ रहे हो न। बिना आहार और पोषण के शरीर कैसे रहता है, यही न!" तो सुनो—"मैं आकाश खाता हूँ। आकाश में अपने स्वजनों का रोग और द्वेष प्रचुर मात्रा में घुला है। उसे निगलता हूँ।"

इतना सुनने के बाद उन कार्यकर्त्ता को लगा कि समूचा परिदृश्य ही बदल गया। सामने न कोई भवन है, न छत, न दीवारें और दालान। दूर-दूर तक बरफ फैली हुई है। उस बरफ पर लपटें उगलती हुई आग धधक रही है। धरती पर और आकाश में वे लपटें जिह्वाओं की तरह लहरा रही हैं। पास ही एक दिगंबर साधु अपना मुँह फाड़े उन लपटों को निगलने की कोशिश कर रहा है।

वे ज्वालाएँ मुख में प्रवेश करती हुई कंठ में ठहर जाती हैं। कंठ का रंग धीरे-धीरे नीलवर्ण का होता जा रहा है। उस संन्यासी की आकृति विराट रूप धारण करती जाती है और फिर धीरे-धीरे सब शांत होता जाता है।

चित्त जैसे अपने आप में स्थिर होता है और दिखाई देता है कि सामने गुरुदेव चहलकदमी करते हुए कह रहे हैं—"राग एक जलती हुई आग है और द्वेष उसका धुआँ। अपने आप को जो भी प्रभु के मार्ग पर ले जाता है, उसके मन में ये विकार तिरोहित हो जाने चाहिए।

"दूसरी तरफ राग-द्वेष शरीर का धर्म भी है। शरीर और संसार है तो वे भी उठेंगे ही। जब साधक अपने आप को गुरु के हवाले कर देता है तो उसके राग-द्वेष गुरु ही लीलने लगते हैं।" गुरुदेव ने यह कहते हुए अपनी बात पूरी की।

इस पर उन कार्यकर्त्ता का प्रश्न था—"तो क्या साधकों और शिष्यों का दायित्व सँभालने वाले सभी महात्मा आहार छोड़ने लगते हैं।"

गुरुदेव ने कहा—"नहीं। आहार कोई नहीं छोड़ता। अपने परिजनों का गुरुतर दायित्व ग्रहण करने के बाद हवा और आकाश वे पोषक तत्त्व सीधे ही प्रदान करने लगते हैं। यह भी तो देखो कि जिस अन्न और आहार से शरीर पोषण प्राप्त करता है वे भी तो आकाश से ही ऊर्जा और प्राण लेकर पुष्ट होते हैं।"

सुनकर उन कार्यकर्त्ता का समाधान हो गया। उस समाधान से भी ज्यादा समाधि जैसा आनंद मिलने लगा। श्रीकृष्ण का विराट रूप देखने के बाद अर्जुन ने जो सौम्य रूप देखा, लगभग वैसी ही प्रफुल्लता अनुभव हो रही थी।

उन्हीं कार्यकर्त्ता को गुरुदेव ने बताया—"अब हम इसी जन्म की नहीं, पिछले जन्म में जाग्रत और जीवंत रही आत्माओं को भी खोज निकालेंगे। एक-एक व्यक्ति को ढूँढ़ने और परखने का काम दुष्कर है। उसके लिए बड़ी संख्या में लोगों को एकत्रित करना और परखना होगा। दो साल से हम लोग जन्म समय के आधार पर परिजनों के स्तर और क्षमताओं की निगरानी कर रहे हैं। उस प्रयोग के कुछ सार्थक परिणाम भी आए हैं।"

ज्योतिर्विद्या का उन्मेष

जन्म समय के आधार पर सक्षम प्रतिभाओं की खोज अर्थात ज्योतिष के आधार पर प्रतिभाओं की परख के परिणाम आने लगे थे। इस संवाद से दो साल पहले फरवरी, 1980 में गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं से उनके जन्म का विवरण माँगा गया था। इसमें जन्म का समय, तिथि, वर्ष और स्थान के अलावा पारिवारिक पृष्ठभूमि की सूचनाएँ शामिल हैं।

इन दिनों प्रचलित ज्योतिष की गणना में पुराने मानदंड और सिद्धांतों का ही प्रयोग किया जाता रहा है। नतीजतन परिणाम भी उलट-पुलट आते हैं। दूसरे ज्योतिष जानने वाले विद्वान फलित बताते समय अपने लालच को रोक नहीं पाते। वे ऐसी घोषणाएँ करने में दिलचस्पी लेते हैं, जिनसे यजमान डर जाए और दान, पूजा, रत्न तथा उपाय आदि के नाम पर पंडित के सामने जेब उँड़ेलता रहे।

गुरुदेव इन कारणों से फलित ज्योतिष के आधार पर अपनी समस्याओं को समझने और समाधान ढूँढ़ने की प्रकृति को निरुत्साहित करते रहे। इस मान्यता में अब भी कोई बदलाव नहीं आया था। फलित ज्योतिष और उसके प्रचलित स्वरूप के प्रति उनकी धारणा ज्यों-की-त्यों थी। समय और संस्कार के अभाव में इस विद्या और इसके विद्वानों में मल विक्षेप की भरमार ने ज्योतिष को उपेक्षणीय और निंदित कर दिया।

फरवरी, 1980 में गुरुदेव ने इस विद्या के नवोन्मेष की पहल की। उनके अनुसार ज्योतिष का उपयोग भविष्य कथन के लिए कतई नहीं किया जाना चाहिए। यह वर्जना जितनी कठोर है, उतनी ही यह संभावना भी सहज है कि इसका उपयोग भविष्य निर्धारण के लिए किया जाए।

इस उद्देश्य से गुरुदेव ने अपने परिजनों, उनके बच्चों और संबंधियों के जन्म समय तथा स्थान आदि के विवरण मँगाए। बहुतों के पास अपनी जन्म कुंडलियाँ भी थीं, पर उन्हें भी केवल जन्म समय और संबंधित विवरण भेजने के लिए कहा गया। उनकी कुंडलियाँ गुरुदेव ने अपने काम के लिए अनुपयुक्त बताईं।

कारण कि वे सैकड़ों वर्ष से चली आ रही पंचांग पद्धतियों और गणनाओं के आधार पर तैयार हुई थीं। सूरज कोई घड़ी-पल देखकर नहीं उगता, अस्त नहीं होता। धरती पर प्रकाश बिखेरने का उसका समय प्रतिदिन घटता-बढ़ता रहता है। पृथ्वी भी सूर्य की परिक्रमा ठीक तीन सौ पैंसठ दिन में नहीं करती। ग्रह-नक्षत्रों की गति और स्थिति में भी यही नियम लागू होता है। इसलिए आकलन वही उपयोगी है, जिस समय के लिए किया जा रहा हो।

जन्म विवरण मँगाने और उसके आधार पर शांतिकुंज में ही उस जातक की संभावना परखने का उद्देश्य परिजनों का आत्मिक स्तर समझना था। वह समय और ग्रह स्थिति यथातथ्य समझी जा सके, इसके लिए आश्रम में ही नई वेधशाला बनाई गई।

अखण्ड ज्योति के पन्नों में यह घोषणा छपी तो परिजनों द्वारा भेजे गए विवरणों का ढेर लग गया। बीसियों पत्र प्रतिदिन कुंडली बनवाने और अध्ययन कराने के लिए आने लगे। कुछ पत्रों में फलादेश भेजने का अनुरोध भी किया गया था, लेकिन इस बात के लिए पहले ही मनाही कर दी गई थी। फलादेश नहीं भेजे जाने थे और न ही भेजे गए।

कुंडलियाँ मँगाने और उस आधार पर परिजनों का आत्मिक स्तर जाँचने की जरूरत क्यों पड़ी? गुरुदेव स्वयं समर्थ हैं, एक सामान्य संकल्प या इच्छा मात्र से वे किसी भी व्यक्ति का भूत, भविष्य तथा वर्तमान स्तर जाँच सकते हैं।

कुछ परिजनों के मन में इस तरह के प्रश्न उठे। उनमें से कुछ ने पत्र भी लिखे। इस बारे में कोई उत्तर प्रायः नहीं दिए गए। साफ था कि ये प्रश्न सिर्फ कुतूहल वश ही किए गए हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित ईश्वरदत्त शर्मा के शिष्य पंडित कृष्णदत्त गुरुदेव के प्रति सहज श्रद्धा रखते थे।

उनके गुरु कहा करते थे कि पंडित जी (गुरुदेव) की दृष्टि में ही वह तेज है, जो जहाँ भी पड़ जाए, वहाँ उसका ओर-छोर अपने आप बोलने लगता है। अध्ययन की जरूरत नहीं पड़ती, व्यक्ति अथवा वस्तु और स्थिति स्वयं अपना बखान करने लगती हैं।

उन्होंने अपना एक अनुभव भी बताया था। सन् 1950 के आस-पास का समय रहा होगा। गुरुदेव उन दिनों अक्सर उत्तराखंड के गुह्य क्षेत्रों में जाया करते थे। पंडित ईश्वरदत्त शर्मा भी पंचांगुली साधना और सिद्धि के शोध में उधर गए हुए थे। रुद्रप्रयाग से आगे एक उपेक्षित, किंतु अतिप्राचीन गौरी मंदिर में दोनों की भेंट हो गई। पंडित जी ने गुरुदेव को देखा।

पहचान तो नहीं सके, लेकिन उनकी उपस्थिति और आभा से प्रतीति हो गई कि कोई दिव्य विभूति सामने है। बिना प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किए ही पंडित जी ने गुरुदेव को प्रणाम कह दिया। उधर गुरुदेव ने अत्यंत सहज और सरल भाव से विनत होकर पंडित जी के प्रणाम का उत्तर दिया। फिर कहा—"आपको यहाँ देखकर अति प्रसन्नता हुई पंडित जी। आप ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि इस क्षेत्र में दिव्य विधाओं के भांडार भरे हुए हैं। आपके अपने विषय ज्योतिष के तो चमत्कारी सूत्र यहाँ के मंदिरों में हैं।"

उद्बोधन सुनकर पंडित जी देखते रह गए। पूछने का मन हुआ कि आप कौन? वे पूछें इससे पहले ही गुरुदेव ने अपना परिचय दे दिया। पंडित जी कहने लगे—"सामुद्रिक शास्त्र के आधार पर मैं समझ तो रहा था कि आप कोई असाधारण विभूति हैं, लेकिन इतना स्पष्ट परिचय नहीं पा सका था। मैं अभी इस विषय में विद्यार्थी ही हूँ।"

"अगर आप अब भी विद्यार्थी हैं तो फिर मैं तो नितांत अनगढ़ ही हूँ। अक्षर ज्ञान भी नहीं है।"—गुरुदेव ने कहा। पंडित जी ने इसके उत्तर में और भी विनय भाव व्यक्त किया। इस पर गुरुदेव ने एकदूसरे के प्रति शिष्टाचार का क्रम वहीं रोकते हुए कहा—"आप जिस विद्या को सिद्ध कर चुके हैं, उस क्षेत्र में हमारा भी कुछ करने का मन है। उपयुक्त समय आने पर करेंगे।"

"आपको इसकी क्या जरूरत महाप्रभु? आप तो जहाँ भी नजर फेंकते हैं, वहीं सब कुछ अनायास ही उद्घाटित हो जाता है।"—पंडित जी ने कहा। इस पर गुरुदेव का उत्तर था—"दीपक जलाने से रोशनी उत्पन्न हो जाए तो उस काम के लिए अपनी साधना-सामर्थ्य का उपयोग क्यों किया जाए?"

सुनकर पंडित जी गद्गद हुए। उन्होंने विनोद भी किया, तो हम लोग रोशनी जलाने का काम कर रहे हैं?

गुरुदेव ने कहा—"आप विद्वान हैं। अच्छी तरह जानते हैं कि भगवान ने प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग भूमिका दी है। उसे अपना ही काम करना चाहिए।" इसके बाद उन्होंने चर्चा को विराम दिया और कहा— "खैर! आप इस क्षेत्र में आए हैं तो यहाँ से करीब चार मील बाघंबरी बाबा के पास जरूर जाएँ। वे त्रिकालदर्शी हैं। पास आने वालों पर बाघ की तरह गुर्राते हैं और हर किसी को नजदीक फटकने नहीं देते। उनके पास आपको ज्योतिष के महत्त्वपूर्ण सूत्र हाथ लगेंगे।"

इस संवाद के बाद पंडित जी और गुरुदेव दोनों अलग-अलग दिशाओं में चले गए। कुछ माह बाद गुरुदेव मथुरा आ गए। पंडित जी भी अपने गृहनगर लौट गए। दोनों में संपर्क और संवाद बना रहा। उन्हीं पंडित जी के शिष्य कृष्णदत्त शांतिकुंज आए तो उन्होंने अपने गुरु से सुने संस्मरणों का हवाला दिया।

गुरुदेव ने कहा—"पहले उनसे हुई चर्चा मुझे अब भी याद है। उनने कहा था कि ज्योतिष विद्या का उपयोग हम लोग किसी दिन अवश्य करेंगे। इसका उद्देश्य भविष्य-कथन नहीं, लोगों के भविष्य का निर्धारण होगा।" पंडित कृष्णदत्त ने कहा—"हमारे गुरु भी इसी मत के समर्थक थे। वे कहते थे कि पंडित लोग यजमानों से दान-दक्षिणा लेकर, रत्न बेचकर या यंत्र-मंत्र के पुरजे देकर धन ऐंठते हैं, यह गलत है। ऐसा ज्योतिषी जातक का और अपना अहित करता है।"

उन्होंने कहा—"पिछले कर्मों का परिणाम तो भुगतना ही पड़ेगा। दान-पुण्य और सत्कर्म के द्वारा उसकी धार को सहनीय बनाया जा सकता है। पूजा-प्रार्थना से पात्रता विकसित हो सके तो उन परिणामों को टाला भी जा सकता है, लेकिन किसी भी मुमुक्ष को इसकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिए।"

पंडित कृष्णदत्त ने इस भेंट के बाद कुछ समय शांतिकुंज में ही बिताया। यहाँ विज्ञान और शुद्ध गणित के आधार पर सही जन्मकुंडलियों के निर्माण में कुछ समय सहयोग भी दिया। जिस समय पंडित जी यहाँ आए थे, ग्यारह और ज्योतिष आचार्य इस काम में लगे हुए थे। पंडित कृष्णदत्त ग्रह-नक्षत्रों की गणना, गति और स्थिति जानने की आसान विधियों के अच्छे जानकार थे। उन्होंने शांतिकुंज में शोध कर रहे कुछ विद्वानों से इस विषय में विमर्श भी किया। बहरहाल ज्योतिष के आधार पर प्रतिभाओं को पहचानने और तराशने की प्रक्रिया आरंभ हुई।

उन दिनों शांतिकुंज के मुख्य भवन से गायत्री मंदिर के बीच मार्ग के दोनों ओर सुरम्य वाटिकाएँ सजी हुई थीं। दोनों ओर चौदह वाटिकाएँ जैसे चौदह भुवन की प्रतीक हों। लता-बल्लरियों से आवृत छत वाली इन वाटिकाओं के बीच में पत्थर के बने तख्तनुमा आसन थे। जमीन से करीब दो फुट ऊँचे बने इन आसनों पर बैठकर लोग आसानी से ध्यान लगा सकते थे। उनकी लंबाई-चौड़ाई इतनी थी कि पाँव फैलाकर विश्राम भी किया जा सकता था।

कुछ समय पहले ही इन वाटिकाओं का नवीनीकरण हुआ। नए-नए पौधों और लता-पत्रों को लाकर रोपा गया था। अंकुरित और पल्लवित होकर उनकी बेलें ऊपर चढ़ने लगी थीं तथा आसन को ऊपर से आच्छादित भी करने लगी थीं। साधक और शिविरार्थी उन लता-कुंजों में बैठकर ध्यान-स्वाध्याय करते। दोपहर के समय जब धूप तेज हो जाती और हवा में भी थोड़ी तल्खी आ जाती तो साधकों को ये वाटिकाएँ बहुत लुभाती थीं।

कोई तीन-चार महीने पहले ही गुरुदेव ने इन वाटिकाओं को नए सिरे से सँवारने-सजाने की व्यवस्था की थी। प्रवचन हाल से या शांतिकुंज अथवा गायत्री नगर से लौटते हुए साथ चल रहे वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं से वे यदा-कदा इनके बारे में परामर्श भी करते और राह चलते हुए इन्हें और सुंदर बनाने के लिए निर्देश देते। (क्रमशः)

आत्मसम्मान का भाव ऐसे बढ़ाएँ

आत्मसम्मान जीवन का केंद्रिय तत्त्व है, जो व्यक्तित्व के समुचित विकास का निर्णायक आधार है। आत्मसम्मान स्वयं के प्रति अपनी धारणा व अपनी क्षमताओं के बारे में विश्वास का नाम है, जिसके आधार पर हमारी दूसरों के प्रति धारणा तय होती है। जब स्वयं के प्रति सकारात्मक धारणा होती है, तो अपने बारे में, जीवन के बारे में तथा जगत् में अपने स्थान के बारे में हम सकारात्मक दृष्टिकोण लिए होते हैं, जो जीवन के उतार-चढ़ावों का बेहतर ढंग से सामना करने में हमें सक्षम बनाता है। इसके चलते दूसरों के प्रति भी हमारा संतुलित एवं सकारात्मक भाव बना रहता है।

जब हमारा आत्मसम्मान न्यून होता है, तो हम स्वयं व अपने जीवन को नकारात्मक व आलोचनात्मक रूप में देखना प्रारंभ करते हैं। अपनी क्षमताओं, व्यक्तित्व या दूसरों के कारण अपने जीवन में होने वाले परिवर्तनों के बारे में आश्वस्त नहीं रहते और हम जीवन की चुनौतियों का सामना करने में भी अक्षम अनुभव करते हैं। साथ ही दूसरों के प्रति भी नकारात्मक एवं असंतुलित भाव से आक्रांत रहते हैं।

आत्मसम्मान को चार आयामों में समझा जा सकता है, यथा—स्व के प्रति धारणा, अपनी पहचान का भाव, दूसरों के प्रति भाव तथा अपनी क्षमताओं पर विश्वास। स्व के प्रति धारणा आत्मविश्वास व सुरक्षा के भाव से जुड़ी है। अपनी मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी हो रही हैं या नहीं, निवास स्थान, शारीरिक स्वास्थ्य और आर्थिक स्थिरता आदि के प्रति सुरक्षा का भाव-विचार इस धारणा में रहता है।

अपनी पहचान के भाव में अपने शरीर, लिंग, नौकरी-पेशे, अपने विश्वास व संस्कृति के प्रति विचार शामिल रहते हैं। अपनों से संबंधित होने के भाव में अपने परिवार, मित्र-संबंधी, समाज, व्यवसाय व कार्यक्षेत्र शामिल रहते हैं। अपनी क्षमताओं के प्रति आश्वस्त होने में जीवन के प्रति न्यूनतम नियंत्रण का भाव रहता है, साथ ही गलतियों से सीख, असफलताओं व चुनौतियों का सामना करने की क्षमता आदि शामिल रहते हैं।

आत्मसम्मान में कमी के कारण जीवन के प्रति सुरक्षा का भाव खंडित हो जाता है। स्वयं के प्रति स्वस्थ एवं संतुलित सोच का अभाव रहता है। इसी तरह दूसरों के प्रति भी विकृत सोच पनपती है और अपनी क्षमताओं के प्रति व्यक्ति में अविश्वास का भाव आता है। ऐसे में व्यक्तित्व का समग्र विकास नहीं हो पाता और एक सुखी, सफल व संतुष्ट जीवन का सपना साकार नहीं हो पाता।

वास्तव में आत्मसम्मान का विकास बचपन से ही प्रारंभ हो जाता है। माता-पिता, अभिभावक, मित्रगण व शिक्षक आदि हमें सतत सकारात्मक या नकारात्मक संदेश-संकेत भेजकर इसके सकारात्मक या नकारात्मक विकास में उत्प्रेरक की भूमिका निभाते हैं। इस संदर्भ में आज के दौर में मीडिया के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इन सबके साथ जुड़े नकारात्मक प्रभाव आत्मसम्मान को न्यून करते हैं और लोगों की व स्वयं की आशा-अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाने के कारण असुरक्षा का भाव सुलगता रहता है।

न्यून आत्मसम्मान के कारण हम सामाजिक स्थितियों से बचते फिरते हैं, नई चीजों को आजमाना

बंद करते हैं और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों से दूर भागते रहते हैं। तात्कालिक रूप में हमें इसमें सुरक्षा अनुभव होती है, किंतु दीर्घकाल में यही हमारे अंदर भय व संशय को उत्पन्न करते हैं, जो हमारे मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं और हम अवसाद व उद्विग्नता के शिकार हो जाते हैं। इनसे बचने के लिए हम धूम्रपान, शराब से लेकर तमाम तरह के नशों के आदी हो जाते हैं।

सुखी व आनंदपूर्ण जीवन के लिए यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि आत्मसम्मान की न्यूनता की स्थिति से उबरा जाए। इस संदर्भ में, पहले स्वयं के बारे में नकारात्मक धारणाओं को समझें व उनको चुनौती दें।

इनको कागज के पन्ने या डायरी में लिखें व स्वयं से पूछें कि सबसे पहले आपने ये कब सोचना शुरू किया। दूसरा, इनका सामना करने के सकारात्मक अनुभवों को लिखें। दूसरों ने आपके बारे में क्या कहा था, यह भी देखें।

इस सूची को अपने सामने रखें, जहाँ से आप इसको देखते रह सकें। इस तरह आप स्वयं को सतत स्मरण दिला सकेंगे कि आप सही मार्ग पर हैं। अभी भी पूर्व की नकारात्मक स्मृतियाँ उभर सकती हैं, लेकिन धीरे-धीरे आपके आत्मसम्मान का अंकुरित पौधा मजबूत वृक्ष का रूप ले रहा होगा। इसको खाद-पानी देते रहें, इसको विकसित होता देखें तथा इसकी विरोधी बातों से सावधान रहें।

इसके साथ आप किस चीज में अच्छे हैं, इसको पहचानें। सकारात्मक रिश्तों को विकसित करें। अपने प्रति दयालु व उदार बनें। अपनी जायज माँगों व इच्छाओं का सम्मान करें, इनको पूरा करें। आवश्यकता पड़ने पर 'न' करना सीखें। चुनौतियों को स्वीकार करना सीखें व स्वयं को चुनौतीपूर्ण लक्ष्य दें। साथ ही दूसरों से अपनी तुलना न करें। नियमित रूप से व्यायाम करें, जिससे डोपामीन और सेरोटोनिन जैसे हैप्पीनेस हॉर्मोन उत्सर्जित होते हैं व आत्मसम्मान का भाव पुष्ट होता है।

याद रखें कि हर कोई गलती करता है, अत: यदि जाने-अनजाने में कोई गलती हो जाती है, तो अपने आप को कोसें नहीं। अपनी जीत का उत्सव मनाएँ, वह चाहे छोटी हो या बड़ी। जो आपके नियंत्रण में है, उस पर ध्यान केंद्रित करें। अपने शौक व पसंद की चीजों के लिए समय दें। एक अच्छा मित्र बनें व अपने प्रियजनों के, सहयोगी व शुभचिंतकों के साथ समय बिताएँ।

दैनिक जीवन में इन सद्‌गुणों, आचार-व्यवहार व दिनचर्या से जुड़े कार्यक्रमों का अभ्यास करते रहें, तो कोई कारण नहीं कि आत्मसम्मान का भाव सुदृढ़ नहीं होगा, बल्कि ऐसा आत्मविश्वास जाग्रत होगा, जो अपनी मन:स्थिति को नियंत्रित कर परिस्थितियों से तालमेल बिठाते हुए जीवन में एक नए संतुलन को साध रहा होगा तथा सुख-शांति व आनंदपूर्ण जीवन की नई पटकथा लिख रहा होगा। ❑

भारत को अपना घर ही नहीं सँभालना है। हर क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व भी करना है। इसके लिए उपयुक्त स्थिति उत्पन्न कर सकने वाले ऐसे महामानवों की आवश्यकता है, जो स्वतंत्रता संग्राम से भी अधिक भारी हों। लड़ने से निर्माण का कार्य अधिक कुशलता और क्षमता का है। सो हमें अगले दिनों ऐसे मूर्द्धन्य महामानवों की आवश्यकता पड़ेगी, जो अपने उज्ज्वल प्रकाश से सारा वातावरण प्रकाशवान कर दें।

—परमपूज्य गुरुदेव

अपराध बोध से मुक्ति पर शोध

यौगिक जीवनशैली में जप, तप, मंत्र, ध्यान, व्रत, उपवास जैसी अनेकों तकनीकें सम्मिलित हैं। उद्देश्य के अनुरूप इनका चयन और प्रयोग करने से सर्वथा अनुकूल परिणाम ही प्राप्त होते हैं। आत्मिक विकास के लिए यौगिक जीवनशैली का निर्माण करने की परंपरा तो प्राचीनकाल से चली आ रही है, परंतु इसके साथ ही त्रितापों से मुक्ति के लिए भी यह सर्वोत्तम विधि रही है।

शरीर, मन और आत्मा के रोग-निवारण में यौगिक तकनीकों से उत्कृष्ट अन्य कोई दूसरा विकल्प नहीं है। योग विधा की इसी व्यापकता और समग्रता के महत्त्व को समझते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में यौगिक तकनीकों के द्वारा विभिन्न तरह के मनोशारीरिक रोगों के प्रबंधन एवं उपचार हेतु निरंतर शोध-अनुसंधान कार्यों को संपन्न किया जाता रहा है।

यहाँ यौगिक चिकित्सा के नित-नूतन आयामों को खोजने की सुदीर्घ परंपरा रही है। इसी शृंखला में वर्ष—2014 में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य यहाँ संपन्न किया गया है, जिसमें अपराध बोध की भावना से उबरने के लिए समुचित और सार्थक उपाय के रूप में योग चिकित्सा की कुछ विशिष्ट तकनीकों को प्रस्तुत किया गया है।

अपराध बोध की भावना मानवीय व्यक्तित्व की एक सूक्ष्म एवं संवेदनशील मनोभावनात्मक प्रतिक्रिया है। इसका संबंध आंतरिक विश्वासों, नैतिक मूल्यों और महसूस करने की क्षमता से होता है। यह भावना तब उत्पन्न होती है, जब कोई जाने-अनजाने गलत कार्य हो जाता है और उस कार्य को लेकर व्यक्ति भीतर से यह मानता है कि यह कार्य नहीं किया जाना चाहिए था। उसे उस कार्य के प्रति पश्चात्ताप होता है।

कई बार अपराध बोध की भावना व्यक्ति के जीवन में इतनी प्रगाढ़ और गहरी हो जाती है कि उससे बाहर निकल पाना मुश्किल होता है। ऐसे में संपूर्ण व्यक्तित्व और जीवन का विकास अवरुद्ध हो समाप्ति की ओर प्रेरित होने लगता है। ऐसी स्थिति से बचने एवं उबरने के लिए योग-अध्यात्म शास्त्रों में समाहित जीवन-दृष्टि कहती है कि जाने-अनजाने में कोई अनुचित कृत्य हो जाने पर उसका प्रायश्चित कर लेना चाहिए।

प्रायश्चित का तात्पर्य है जो कुछ अनुचित कार्य के हो जाने की दुःखद भावना है, उसके स्थान पर प्रतिपूर्ति हेतु कुछ अच्छा एवं उचित कार्य कर लेना। इस तकनीक से अपराध बोध की भावना से सहज मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इस अध्ययन में प्रायश्चित तकनीक के इसी महत्त्व और उपयोगिता को प्रायोगिक एवं मनोवैज्ञानिक रीति से सामने लाने का सराहनीय प्रयास किया गया है।

यह शोध अध्ययन विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत शोधार्थी सुरभि शर्मा भदुला द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० चिन्मय पण्ड्या जी के निर्देशन तथा प्रो० जितेन्द्र तिवारी जी के सह-निर्देशन में संपन्न किया गया है। इस शोध कार्य का विषय है—'अ स्टडी ऑफ दि इफेक्ट

ऑफ प्रायश्चित साधना ऑन गिल्ट फिलिंग अमंग एडोलिसेन्ट्स।'

वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक विधि पर आधृत इस अध्ययन के प्रयोग को संपन्न करने के लिए शोधार्थी द्वारा उत्तराखंड राज्य के हरिद्वार जिले से लॉटरी विधि से तीन विद्यालयों का चयन किया गया। ये तीन स्कूल थे—डी0ए0वी0 पब्लिक स्कूल, शासकीय हाईस्कूल एवं गायत्री विद्यापीठ।

इन विद्यालयों से 14 से 20 वर्ष की आयु के 80 किशोर विद्यार्थियों का चयन किया गया, जिनमें अपराध बोध की भावना मौजूद थी। उक्त समस्या के निदान के लिए प्रश्नोत्तरी की सहायता ली गई। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व जिस शोध उपकरण को प्रयुक्त कर चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया, वे हैं—सैनी एंड मिश्रा (2007) द्वारा निर्मित गिल्ट फीलिंग टेस्ट। परीक्षण के उपरांत नियमित 45 दिनों तक प्रायोगिक समूह को प्रायश्चित साधना में सम्मिलित विशेष यौगिक तकनीकों का अभ्यास कराया गया। प्रतिदिन के कराए जाने वाले अभ्यास का कुल समय 55 मिनट था, जिसमें कन्फेशन-20 मिनट, स्पीरीचुअल काउंसिलिंग-20 मिनट, गायत्री मंत्र जप-15 मिनिट तथा एकादशी व्रत।

शोध प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति पुनः प्रयोग में सम्मिलित किशोरों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। प्रथम एवं द्वितीय परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों का शोधार्थी द्वारा सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि प्रायश्चित साधना के रूप में प्रयुक्त विशेष यौगिक तकनीकों के सम्मिलित प्रभाव से अपराध बोध की भावना के स्तर में सार्थक कमी आई है। साथ ही यह भी देखा गया कि शोध के निष्कर्ष रूप में जो सार्थक एवं सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए उसका मुख्य कारण शोधार्थी द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट यौगिक तकनीकें हैं।

इस अध्ययन की विशिष्ट तकनीक प्रायश्चित साधना है। इस साधना के कई आयाम और उद्देश्य हैं, परंतु विशेषकर यह पिछली गलतियों को स्वीकारने, सुधारने और उसके स्थान पर कुछ अच्छा और श्रेष्ठ कार्य करने की मनोआध्यात्मिक विधि है।

व्यक्ति अपने अतीत की गलतियों और नकारात्मक घटनाओं को अंतर्मन में सँजोये रहता है और स्वयं को दोषी मानते हुए भीतर-ही-भीतर भय, आत्मग्लानि, अंतर्द्वंद्व की ग्रंथियाँ—गाँठें उत्पन्न कर लेता है, लेकिन यदि वह अपने दोषों को समझकर उन्हें पुनः न दोहराने के लिए तैयार होता है तथा पिछले जीवन में जो भी गलतियाँ या पाप कर्म हो गए हैं, उनकी प्रतिपूर्ति में कुछ श्रेष्ठ कार्य, जप, तप, सेवा, साधना आदि करने को तत्पर होता है, तब ऐसे में उसके भीतर की बनी गाँठें-ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और उसका जीवन एवं व्यक्तित्व परिष्कृत होते जाते हैं।

विश्व की प्रायः सभी जीवनपद्धतियों में किसी-न-किसी रूप से प्रायश्चित साधना का विधान मौजूद है। जैसे ईसाइयों में लोग ईश्वर के समक्ष खड़े होकर अपने पापकर्मों को स्वीकार कर माफी माँग लेते हैं और आगे न करने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित करते हैं। हिंदू धर्म में तप, यज्ञ, जप, साधना, सेवा, दान आदि अनेक रूपों में प्रायश्चित प्रक्रियाएँ संपन्न की जाती हैं। इसी तरह सभी धर्म, संस्कृति में यह विशिष्ट तकनीक प्रकारांतर से दिखाई देती है।

यह शोध इस महत्त्वपूर्ण मनोआध्यात्मिक तकनीक को एक विशिष्ट एवं प्रभावी व अत्यंत लाभकारी तकनीक के रूप में प्रस्तुत करता है। शोधार्थी ने इस तकनीक के अंतर्गत जिन विशेष प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया है, वे हैं—स्वीकारोक्ति, मंत्रजप, अध्यात्म परामर्शन और

एकादशी व्रत। ये सभी प्रक्रियाएँ तप, साधना एवं व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

इस अध्ययन में प्रायश्चित साधना की पहली प्रक्रिया है—गायत्री मंत्रजप। योग एवं अध्यात्म जगत् में गायत्री मंत्रजप को व्यक्तित्व के परिष्कार एवं रूपांतरण की अत्यंत प्रभावी एवं शक्तिशाली विधि माना गया है। इस मंत्र के नियमित जप से हमारी प्राणिक और चेतनात्मक शक्तियों के केंद्र जाग्रत होने लगते हैं। मंत्र विज्ञान की दृष्टि से गायत्री मंत्रजप से संपूर्ण व्यक्तित्व सकारात्मक रूप से प्रभावित और विकसित होता है। नियमित जप से शरीर, प्राण, मन और भावनाओं के स्तर पर संतुलन, सक्रियता और पवित्रता आते हैं।

साधना की द्वितीय प्रक्रिया है—एकादशी व्रत। भारतीय धर्मशास्त्रों में इस व्रत को प्रारब्धजन्य कर्मों, दोषों से मुक्ति और परिमार्जन का प्रभावी उपाय कहा गया है। हिंदू संस्कृति की कालगणना के अनुसार एक माह को दो भागों में, चंद्रमा की बढ़ती एवं घटती स्थिति के आधार पर विभाजित किया गया है।

हिंदू पंचांग में शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष व इनकी तिथियों का विशेष महत्त्व बताया गया है। माह के दोनों पक्षों की ग्यारहवीं तिथि को ही एकादशी कहा जाता है। शास्त्रों में एकादशी तिथि पर किए जाने वाले उपासनात्मक कृत्यों एवं साधना का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। एक वर्ष में कुल चौबीस एकादशी तिथियाँ हैं; जिनमें सभी का अलग-अलग नाम तथा उसके अनुरूप साधना-उपासना, व्रत-उपवास आदि का उपदेश है।

तप, व्रत-उपवास आदि प्रायश्चित साधना के सबल अंग हैं। एकादशी व्रत में ये तीनों अंग समाहित हैं, इसलिए इस व्रत को एक प्रभावी तकनीक के रूप में शोध में स्थान दिया गया है। शोधार्थी ने अपनी विवेचना में एकादशी व्रत के आध्यात्मिक, मांत्रिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पक्षों के साथ-साथ वैज्ञानिक तथ्यों पर आधृत मार्मिक पहलुओं को भी विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है।

प्रायश्चित साधना की तीसरी तकनीक आध्यात्मिक परामर्शन है। यह जीवन व उससे जुड़ी चुनौतियों को जानने-समझने हेतु नई दृष्टि प्रदान करती है।

उपचारात्मक प्रक्रिया में आध्यात्मिक परामर्शन द्वारा रोगी के समाधान के एक सकारात्मक व नए पहलू से अपनी परेशानियों को देखने व उनसे बाहर आने की दिशा में प्रेरित किया जाता है।

चूँकि मनुष्य एक आध्यात्मिक सत्तासंपन्न प्राणी है, अत: उसके शरीर, मन और आत्मा—तीनों पहलू आपस में गहराई से जुड़े रहते हैं। ऐसे में किसी भी तरह की समस्या के समाधान में उक्त तीनों पहलुओं का समावेश होने पर ही वह समग्र और सार्थक होती है।

आध्यात्मिक परामर्शन की प्रक्रिया मनुष्य जीवन की इसी समग्रता को स्वीकार कर व्यक्ति की आंतरिक एवं आत्मिक शक्तियों को उद्वेलित करती है। इससे व्यक्ति की नकारात्मक सोच व भावनाएँ, क्रोध, तनाव, चिंता आदि के स्थान पर अच्छे विचार, सद्भावनाएँ, स्थिरता, धैर्य, शांति, संतुष्टि, स्वप्रेरणा, आत्मविश्वास, संकल्पशक्ति जैसी अनेक श्रेष्ठ कल्याणकारी क्षमताएँ विकसित होने लगती हैं। मनोव्याधियों के उपचार में उक्त विशेषताओं के कारण ही यह तकनीक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रभावी मानी जाती है।

प्रायश्चित साधना की चतुर्थ प्रक्रिया स्वीकारोक्ति है। कन्फेशन अर्थात स्वीकारोक्ति एक

मनोआध्यात्मिक तकनीक है। इसमें व्यक्ति अपने दोषों एवं गलत कार्यों के प्रति संवेदनशील होकर ईश्वर अथवा विश्वसनीय लोगों के समक्ष अपनी सच्चाई को स्वीकार करते हुए सभी बातें कह देता है। इससे उसके भीतर अपराध बोध की ग्रंथि नहीं बन पाती है और यदि पहले से ऐसी ग्रंथि मौजूद है तो उसका समाधान हो जाता है।

बुरी स्मृतियाँ एवं भावनाएँ यदि भीतर दबी रहें तो वह समूचे व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं और अनेक मनोरोगों का कारण भी बनती हैं। स्वीकारोक्ति की प्रक्रिया में व्यक्ति इन भावनाओं को बाहर निकालकर अनेक तरह के रोगों, समस्याओं से भी बचता है और अपने व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन लाने में भी समर्थ होता है।

उपरोक्त चारों तकनीकों को प्रायश्चित साधना के अंतर्गत सम्मिलित कर योग चिकित्सा का सर्वथा एक नया आयाम प्रकट किया गया है, जो अपराध बोध की भावना से मुक्ति का समुचित समाधान प्रस्तुत करता है। साथ ही अन्य अनेकों मनोभावनात्मक समस्याओं के समाधान में प्रायश्चित साधना के महत्त्व एवं उपादेयता को प्रकट करता है। ❑

राजकुमार वसुसेन विवाहयोग्य थे। उनसे विवाह की आकांक्षा में राज्य की कई युवतियाँ उनके समक्ष पहुँचीं। राजभवन में कार्यरत दासी की पुत्री भी राजकुमार वसुसेन से मन-ही-मन प्रेम करती थी। उनसे विवाह की आकांक्षा रखने वाली अन्य युवतियों में मंत्रियों, सेनाध्यक्षों, सेठों की पुत्रियाँ सम्मिलित थीं, सो उसकी माँ ने उसे उस सभा में जाने से रोका, जिसमें वसुसेन अपने लिए योग्य वधू का चयन करने वाले थे। दासीपुत्री की भावना शुद्ध थी, इसलिए वह संकोचवश जाकर उस भीड़ में खड़ी हो गई। उस सभा में वसुसेन ने सभी युवतियों को एक बीज दिया और उनसे कहा कि छह माह बाद उनमें से जो युवती सबसे सुंदर पुष्प खिलाकर देगी, उससे ही राजकुमार विवाह करेंगे। दासीपुत्री पूरे मनोयोग से उस बीज की देख-भाल में जुट गई। उसने उसे गमले में रोप दिया और रोज उसे खाद-पानी देती, धूप दिखाती, पर उसके लाख प्रयत्नों के बाद भी उस बीज से अंकुर न फूटा। छह माह बाद वह अपने खाली गमले को लेकर राजसभा पहुँची तो उसने देखा कि शेष युवतियाँ सुंदर पुष्पों से सुसज्जित गमलों के साथ वहाँ खड़ी हैं। उसका मन निराशा से भर उठा। पर जब परिणाम बताने की बारी आई तो राजकुमार ने दासीपुत्री को ही चुना और बोले—''जो बीज मैंने सबको दिया था, वह निर्जीव था। मात्र इसने ही ईमानदारी से उसका पालन किया, शेष सभी अपने असत्य का प्रमाण लेकर यहाँ आई हैं।'' दासीपुत्री को उसकी सत्यप्रियता का पुरस्कार राजलक्ष्मी बनकर मिला।

औषधीय गुणों से भरपूर पुष्प

पुष्प प्रकृति के अनुपम उपहार हैं। जहाँ वे अपने सतरंगी सौंदर्य के साथ परिवेश में अपनी रंगत बिखेरते हैं तो वहीं अपने औषधीय गुणों के कारण इनसान एवं जीव-जंतुओं के जीवन को समृद्ध भी करते हैं। प्रस्तुत है यहाँ कुछ ऐसे ही औषधीय गुणों से भरपूर पुष्प, जो एक ओर जहाँ जीवन को सुंदर बनाते हैं तो वहीं दूसरी ओर हमारे स्वास्थ्य के लिए वरदान भी सिद्ध होते हैं।

गेंदा एक लोकप्रिय फूल है, जो प्राय: माला में गुँथकर पर्व-त्योहारों एवं उत्सवों की शोभा बढ़ाता है, जबकि गेंदे का उपयोग एक सजावटी फूल से कहीं अधिक है। गेंदा अपने एंटी-सेप्टिक, एंटी-इंफ्लामेटरी, एंटी-स्पास्मोडिक और कसैले गुणों के लिए जाना जाता है, जिनके आधार पर यह रक्त परिसंचरण, सिरदरद, घाव, दाँतों में दरद व गले की खराश में अत्यधिक लाभदायक रहता है।

गेंदे का सेवन पाचन तंत्र को विषमुक्त (डिटोक्स) करने में सहायक रहता है व शरीर को संक्रमण से बचाता है। इसका उपयोग चाय बनाने में भी किया जाता है। गेंदे के बीज को एकत्र कर मिसरी के साथ सेवन करने पर यह एक बलवर्द्धक औषधि का कार्य करता है तथा इससे दमे व खाँसी की शिकायत में लाभ मिलता है। गेंदे के पुष्प को नारियल तेल के साथ कुचलकर व मिलाकर मालिश करने पर सिर के संक्रमण व फोड़े-फुँसियों में आराम मिलता है।

इसी तरह कैलेंडुला फूल की पंखड़ियों का उपयोग कटने, जलने व घावों को ठीक करने के लिए किया जाता रहा है। अपने जीवाणुरोधी गुणों के कारण यह त्वचा स्थित चकत्ते व मुँहासों को ठीक करने में उपयोग किया जाता है। यह मांसपेशियों की ऐंठन को ठीक करता है तथा मासिक धर्म के दिनों में राहत देता है। कैलेंडुला अपने कसैले गुणों के कारण मुख के स्वास्थ्य को प्रोत्साहित करता है।

गुड़हल एक अन्य प्रचलित फूल है, जो लाल, गुलाबी, सफेद, पीले और नारंगी रंग में पाया जाता है। गुड़हल में लौह-तत्त्व, विटामिन बी, सी और एंटी-ऑक्सिडेंट्स होते हैं।

यह प्रदर, बालों की समस्या और सरदी-जुकाम जैसे रोगों में लाभदायक रहता है। यह दस्त, बवासीर, रक्तस्राव के साथ बालों के झड़ने व खाँसी आदि में भी लाभकारी होता है।

गुड़हल के ताजे लाल फूलों को कुचलकर इसके रस को नहाते समय बालों पर हलका-हलका रगड़ा जाए, तो यह एक बेहतरीन कंडीशनर का काम करता है। गुड़हल की पत्तियों की चाय के सेवन से सरदी, जुकाम व निम्न रक्तचाप में राहत मिलती है।

गुड़हल के फूल को गोमूत्र के साथ पीसकर लगाने से बालों के झड़ने व सफेद होने की समस्या में लाभ मिलता है। गुड़हल के फूल को सरसों या नारियल के तेल के साथ उबालने के बाद जो सिद्ध तेल बनता है, वह शिरोरोग में उपयोग किया जाता है। गुड़हल के फूलों को चबाया जाए तो यह स्फूर्तिदायक होता है और माना जाता है कि इससे पौरुषत्व में वृद्धि होती है।

गुलाब का सुंदर फूल कई रंगों में पाया जाता है व अपनी विशिष्ट खुशबू के साथ यह औषधीय गुणों से भी भरपूर है। इसकी पंखड़ियाँ भीनी सुगंध के साथ मीठा स्वाद लिए होती हैं। इसमें टैनिन,

विटामिन ए, बी, सी और ई होते हैं। यह आवश्यक तेलों से भी युक्त होता है।

इसके फूल के रस का उपयोग शरीर की गरमी और सिरदरद को कम करने के लिए किया जाता है। इसे शीत प्रकृति का माना जाता है, जिस कारण यह एसिडिटी व पेट के लिए बहुत लाभकारी रहता है व पाचन संबंधी समस्याओं को ठीक करने में सहायता करता है।

गुलाब के जल से आँखों की जलन दूर होती है व त्वचा संबंधी समस्याओं में गुलाब का लेप सहायक रहता है। कब्ज को कम करने के लिए गुलाब की चाय का सेवन किया जा सकता है। अपनी सुगंध, स्वाद व औषधीय गुणों के कारण गुलाब की पंखड़ियों से बना गुलकंद—पान आदि में बहुतायत में उपयोग किया जाता है। अपने एंटी-इंफ्लामेटरी गुणों के कारण गुलाब जोड़ों और मांसपेशियों के दरद में राहत दिलाने में कारगर माना जाता है। विटामिन-सी से भरपूर गुलाब समग्र स्वास्थ्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण एंटीऑक्सीडेंट है। गुलाब की पंखडियाँ व शरबत हृदय रोग में उपयोगी रहते हैं व चिंता-अवसाद से लड़ने में सहायता करते हैं।

गुलदाउदी का फूल सरदी, सिरदरद, आँखों में सूजन, गले में खराश और फोड़ों से संबंधित उपचार में चीनी चिकित्सा का अभिन्न हिस्सा रहा है। इसका फूल उच्च रक्तचाप, मधुमेह, बुखार, सूजन और चक्कर की स्थिति में सुधार में सहायक रहता है। गुलदाउदी के पत्तों के लेप से सिरदरद में राहत मिलती है व इसके पत्तों को चबाने से छालों में लाभ होता है। इसके सूखे फूल से पथरी में लाभ होता है।

सूरजमुखी भी एक उपयोगी फूल है। मैग्नीशियम, पोटैशियम, जस्ता और लौह जैसे पोषक तत्त्वों से भरपूर सूरजमुखी के बीज हृदय, पाचन और मस्तिष्क के कार्य में लाभदायक रहते हैं। सूरजमुखी का तेल हृदय की समस्याओं, मोटापे और अपच से जुड़े रोगों को रोकता है। यह त्वचा में नमी बनाए रखता है, अतः मालिश में इसका उपयोग किया जाता है।

इसका बीज विटामिन व खनिज तत्त्वों से भरपूर होता है, जिसका कुकिंग तेल बनाया जाता है। इसके फूल की पत्तियों व बीजों का सेवन किया जाता है। इसके साथ केसर ठंढे क्षेत्रों में पाए जाने वाला एक सुगंधित एवं बहुत सुंदर पुष्प है। कश्मीर में इसे बहुतायत में उगाया जाता है।

इसके पुष्प के वर्तिकाग्र (फिलामेंट) को एक गुणकारी औषधि के रूप में उपयुक्त किया जाता है तथा यह काफी महँगी औषधि के रूप में कार्य करता है, जिसका न्यून मात्रा में ही उपयोग किया जाता है। मिठाइयों, बिरयानी, शीत पेय व अन्य मीठे व्यंजनों में रंग और स्वाद बढ़ाने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इसे गरम प्रकृति का माना जाता है व यह पेट की समस्याओं को दूर करने में लाभकारी रहता है।

कमल एक जाना-पहचाना पावन पुष्प है, जो सफेद या गुलाबी रंग लिए होता है। यह भारत का राष्ट्रीय पुष्प भी है और पूर्वी संस्कृतियों में एक पवित्र फूल माना जाता है। भारतीय उपासनास्थलों पर इसका पूजा में उपयोग किया जाता है। कमल के पुष्प में विटामिन-ए, बी और सी पाया जाता है। इसके फूलों से बनाई चाय बहुत लाभकारी होती है। इसके तनों की स्वादिष्ट सब्जी भी बनती है। अपने औषधीय गुणों के कारण कमल त्वचा रोग, जलन, दस्त और ब्रोंकाइटिस के उपचार में सहायता करता है।

इसी तरह जास्मिन या चमेली एक एंटीवायरल गुणों से भरपूर पुष्प है, जिसका सलाद व मिठाई में उपयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों को खाने से मुँह के छाले, बवासीर, पेट के कीड़े, दाद-खाज आदि से राहत मिलती है। चमेली की

चाय चिंता, अनिद्रा और स्नायविक संस्थान के रोगों में लाभदायक रहती है। इसमें श्वास व रक्तचाप को नियंत्रण करने का गुण होता है, अत: अवसाद में इसका उपयोग किया जाता है। पाचन समस्याओं, मासिक धर्म के दरद और सूजन को कम करने में यह सहायक रहता है।

इसके साथ शरीर दरद व ऐंठन में चमेली का तेल उपयोग किया जाता है। बालों के स्वास्थ्य एवं पोषण में इसका विशिष्ट महत्त्व रहता है। इसी तरह हरसिंगार का फूल एंटी-बैक्टीरियल, एंटी-वायरल और एंटी-रुमेटिक गुणों से भरपूर है व साइटिका, माइग्रेन, मलेरिया, डेंगू और चिकनगुनिया जैसे रोगों में बहुत उपयोगी होता है।

हरसिंगार की पत्तियों के काढ़े या इसके सूखे पत्ते के चूर्ण का पानी के साथ नियमित रूप से प्रयोग करने से साइटिका के रोग से राहत मिलती है। हरसिंगार के फूलों से बनी चाय पीने से माइग्रेन में आराम मिलता है।

सदाबहार फूल अपने औषधीय गुणों के लिए जाना जाता है। विशेषज्ञों के अनुसार इसके पौधे में सौ से अधिक एल्केलॉयड्स पाए जाते हैं, जो बहुत लाभदायक होते हैं। सदाबहार को मधुमेह, रक्तचाप व कैंसर में बहुत उपयोगी माना जाता है। इसके फूलों को पानी में उबालकर-छानने के बाद प्रात: खाली पेट पीने पर मधुमेह को बहुत सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है।

सदाबहार की चार ताजा पत्तियों को खाकर भी इस तरह का लाभ लिया जा सकता है। रक्तचाप में सदाबहार की जड़ों को साफ कर प्रात: खाली पेट चबाने व इसके रस को चूसने से लाभ मिलता है। इसकी पत्तियों की चटनी बनाकर सेवन करने से कैंसर के रोगियों को लाभ मिलता है व इसका कोई दुष्प्रभाव भी नहीं होता।

इस तरह ये पुष्पों के अद्‌भुत संसार के कुछ उपयोगी उदाहरण हैं, जिन्हें घर-आँगन व खेत-खलियान में उगाकर परिवेश की सौंदर्य-वृद्धि की जा सकती है और इनके औषधीय गुणों को समझते हुए इनसे लाभान्वित भी हुआ जा सकता है। ❑

अनंत ब्रह्मांड पर आधिपत्य जमाने की मनुष्य की व्यर्थ चेष्टा पर उसे चेताते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है—"अच्छा होता कि हम अपनी धरती ही सुधारते और बेचारे चंद्रमा को उसके भाग्य पर छोड़ देते। अभी तक हमारी मूर्खताएँ धरती तक ही सीमित रही हैं। उन्हें ब्रह्मांडव्यापी बनाने में मुझे कोई ऐसी बात प्रतीत नहीं होती, जिस पर विजयोत्सव मनाया जाए। चंद्रमा पर मनुष्य पहुँच गया तो क्या? यदि हम धरती को ही सुखी नहीं बना पाए तो यह प्रगति बेमानी है।" प्रगति के नाम पर आज विकृति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाए चल रहे इनसान के लिए बर्ट्रेंड रसेल की ये पंक्तियाँ आज भी बहुत सार्थक प्रतीत होती हैं।

मानसिक तप के लक्षण

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की पंद्रहवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के पंद्रहवें श्लोक पर चर्चा की गई थी। इसमें श्रीभगवान कहते हैं कि जो किसी को भी न उद्विग्न करने वाला, सत्य एवं प्रिय तथा हितकारक भाषण है, वह तथा स्वाध्याय और अभ्यास भी वाणी संबंधी तप कहा जाता है। यहाँ श्रीभगवान कहते हैं कि जो वचन वर्तमान में अथवा भविष्य में किसी भी तरह के उद्वेग या विक्षेपों को जन्म देने वाला न हो, ऐसा वचन वाणी संबंधी तप का प्रथम गुण है। इसके साथ ही उसका सत्य होना, अहंकार एवं अभिमान से रहित होना दूसरा गुण है। कई बार व्यक्ति सत्य तो बोलता है, पर उसका सत्य कटु व अप्रियकर हो तो मन में विक्षेप एवं कष्ट को ही जन्म देता है। अतः भगवान कहते हैं कि उसका इस तरह से बोला जाना कि वह प्रियकर हो तथा क्रूर भाव, रूखे-तीखेपन से मुक्त हो, उसमें अपमानजनक शब्द न हों तथा वह प्रेमयुक्त हो तो वह प्रियकारी वाक्य कहलाता है।

ऐसा कहने के पीछे भगवान कृष्ण का भाव है कि वाणी ऐसी होनी चाहिए, जो प्रिय एवं हितकारक हो—यदि ऐसा न किया जा सके तो उससे अच्छा मौन रह जाना होता है। कटु सत्य बोलने से श्रेष्ठ तो वाणी का इस तरह से प्रयोग करना है, जो कि मधुर हो और सामने वाले व्यक्ति को, सुनने वाले व्यक्ति को जीवन की दिशा प्रदान कर सके। अगर हम सत्य बोलने के क्रम में किसी को आहत करते हैं तो उससे किसी का हित नहीं होता, इसलिए संवेदनशील बनकर ही अपनी बात कहनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरों से प्रीतिकर, रुचिकर बोलने के लिए असत्य बोला जाए। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण बोलने में यह सीमा निर्धारित करते हैं कि वह बोला जाए जो उद्वेग को न पैदा करे, जो प्रिय हो, हितकारक हो, सत्य एवं यथार्थ हो। यहाँ पर प्रिय बोलने का अर्थ यह भी नहीं है कि दूसरों की झूठी प्रशंसा की जाए, बल्कि सत्य वचन ही बोला जाए, पर इस तरह से बोला जाए कि उसके व्यक्तित्व के निर्माण में उसे सहयोग मिल सके। इस तरह की वाणी बोलने के अतिरिक्त वे स्वाध्याय को भी वाणी संबंधी तप में ही गिनते हैं।]

इस प्रकार से इस श्लोक में भगवान वाणी संबंधी तपों को गिनाते हैं।

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ 16॥

शब्दविग्रह—मनःप्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः, भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते।

शब्दार्थ—मन की प्रसन्नता, (**मनःप्रसादः**), शांतभाव (**सौम्यत्वम्**), भगवच्चिंतन करने का स्वभाव (**मौनम्**), मन का निग्रह (और) (**आत्मविनिग्रहः**), अंतःकरण के भावों की भली भाँति पवित्रता (**भावसंशुद्धिः**), इस प्रकार (**इति**), यह (**एतत्**), मन संबंधी (**मानसम्**), तप (**तपः**), कहा जाता है (**उच्यते**)।

अर्थात मन की प्रसन्नता, सौम्य भाव, मननशीलता, मन का निग्रह और भावशुद्धि ये मन संबंधी या मानसिक तप कहलाते हैं। ये एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण सूत्र है; क्योंकि इसमें भगवान कृष्ण कहते हैं कि मानसिक तप का पहला लक्षण मन की प्रसन्नता है। कई बार लोग स्वयं को कष्ट देने को, स्वयं को अनावश्यक तकलीफों से गुजारने को तप समझने लगते हैं।

पतंजलि, योगसूत्र में कहते भी हैं कि '**तपो द्वन्द्वसहनम्**'—अर्थात तप द्वंद्व को सहने को कहते हैं। इसी को वे आगे भली भाँति परिभाषित करते हुए कहते हैं कि '**तच्च चित्त प्रसादनम् अबाधनम्**'—अर्थात वह तप चित्त की प्रसन्नता को बाधित न करता हुआ होना चाहिए। इसीलिए भगवान कृष्ण यहाँ पहला सूत्र ही ये कहते हैं कि '**मनःप्रसादः**' मन की प्रसन्नता, चित्त की प्रसन्नता मानसिक तप का प्रथम लक्षण है।

वस्तुतः दुर्गुण-दुराचारों के कारण भोगों की प्राप्ति के लिए जब मन प्रयत्न करता है तो मन में मात्र अशांति ही जन्म लेती है। उस समय, जब मन उनकी प्राप्ति के लिए मचलता है तब उसे ऐसा प्रतीत अवश्य होता है कि ये भोग उसे शांति प्रदान करेंगे; सुख देंगे, पर वस्तुतः वो अज्ञान व दुःख का ही कारण बनते हैं। इन समस्त दुर्भावनाओं से मन को मुक्त रखने पर ही मन को प्रसन्नता प्राप्त हो पाती है।

इस संदर्भ में एक पौराणिक आख्यान आता है कि जब कुबेर ने स्वर्णनगरी लंका का निवास किया तो वो उसे भगवान शिव को भेंट करने गया। भगवान शिव यक्षराज कुबेर से बोले—"कुबेर! मैं कैलास पर समाधिमग्न रहने में ही संतुष्ट हूँ—इस स्वर्णनगरी का मैं क्या करूँगा? तभी दशानन रावण वहाँ पहुँचे और उन्होंने भगवान शिव से प्रार्थना की कि लंका उसे दे दी जाए।

भगवान शिव ने सहर्ष सहमति दी। इस पर कुबेर बोले—"भगवन्! रावण तो पहले ही 36 महल लेकर बैठा है, उसको एक और की भला क्या आवश्यकता है?" प्रत्युत्तर में भगवान शिव बोले—"इसे रावण को ही दे दो कुबेर! जो 36 महलों से संतुष्ट नहीं हुआ, उसे 37वाँ भी संतोष देकर नहीं जाएगा।"

जिसके मन में असंतोष, अतृप्ति, अभाव, अनुचित विचार, अनर्गल भावनाएँ उद्विग्नता पैदा करते रहते हैं—वो भला तप कैसे कर सकता है? इसीलिए भगवान कृष्ण मन की प्रसन्नता को पहला लक्षण बताते हैं, जो मानसिक तप का परिचायक है। जिस मन में राग एवं द्वेष की हलचलें पैदा न हों, स्वार्थ और अभिमान के थपेड़े जिसके व्यक्तित्व को प्रभावित न करें एवं जिसका मन दया, क्षमा, संतोष, तृप्ति आदि गुणों से अभिपूरित रहे तो वह मन सदा प्रसन्नता को अनुभव करता है। मन की यह प्रसन्नता ही मानसिक तप का प्रथम लक्षण है।

इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि—

हित परिमित भोजी नित्यम् एकान्तसेवी।
सकृत उचित हितोक्तिः स्वल्पनिद्राविहारः॥
अनुनियमशीलो यो भजत्युक्तकाले।
स लभत इन शीघ्रं साधुचित्तप्रसादनम्॥

अर्थात जो शरीर के लिए हितकारक एवं नियंत्रित भोजन करने वाला है, सदा एकांत में रहने के स्वभाव वाला है, किसी के पूछने पर कभी कोई हित की बात बोल देता है अर्थात

बहुत कम बोलता है, कम सोता एवं कम घूमता है—इस प्रकार का साधक बहुत शीघ्र चित्त की प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है। इस चित्त की प्रसन्नता को भगवान कृष्ण मानसिक तप का पहला लक्षण घोषित करते हैं।

इसके बाद भगवान सौम्यता को या मन के सौम्य भाव को मानसिक तप का दूसरा लक्षण बताते हैं। इस भाव के होने का तात्पर्य मन के हिंसा, क्रूरता, द्वेष, कुटिलता आदि दुर्गुणों से मुक्त होने से है। जिस व्यक्ति के मन में ऐसे दुर्गुण निवास नहीं करते, उसका मन सहज सौम्य भाव को उपलब्ध हो जाता है। निश्चय ही फिर ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व सहज मौनावस्था को उपलब्ध हो जाता है।

इस आंतरिक मौन के भाव को, जिसमें बाह्य जीवन के उद्वेग, परिस्थितियों की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता किसी प्रकार के आंतरिक व्यवधान को जन्म नहीं देते—मन का मौन भाव है। इसे भी भगवान, मानसिक तप के लक्षणों में से एक मानते हैं।

इसके उपरांत वे आत्मविनिग्रह एवं भावसंशुद्धि को भी मानसिक तप का लक्षण मानते हुए कहते हैं कि मन पर संपूर्ण स्वामित्व एवं मानसिक व्युतिक्रमों पर पूर्ण निग्रह-आत्मनिग्रह है एवं जिसके भाव शुद्ध एवं पवित्र हो गए हों, वह भावशुद्धि है। इन दोनों गुणों का होना भी मन संबंधी तप का लक्षण है। ये सभी मानसिक तपों के लक्षण हैं। (क्रमशः)

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

तपश्चर्या के लाभ

(पूर्वार्द्ध)
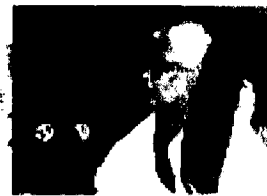
परमवंदनीया माताजी के उद्‌बोधन न केवल एक सामान्य जन को श्रेष्ठ पथ पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं, वरन वे गायत्री परिजनों, साधकों, शिष्यों को भी गहन साधनात्मक पथ पर बढ़ने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। अपने ऐसे ही प्रस्तुत उद्‌बोधन में परमवंदनीया माताजी नवरात्र के पूर्णाहुति के क्रम में सभी साधकों को संबोधित करते हुए कहती हैं कि सभी साधकों के अनुष्ठान में पूज्य गुरुदेव की सूक्ष्म उपस्थिति एवं वातावरण की ऊर्जा भी जुड़े हुए हैं, जो उनके अनुष्ठान को और विशिष्ट बनाते हैं। वे सभी से कहती हैं कि नवरात्र अनुष्ठान का फल तभी प्राप्त हो पाता है, जब व्यक्ति अपने अंतरंग को भगवान से जोड़ पाता है और लोक-मंगल के भाव से की गई ऐसी तपस्या अतुलनीय प्रभाव छोड़कर जाती है। वंदनीया माताजी सभी साधकों से कहती हैं कि वे स्मरण करें कि वे भगवान का स्वरूप हैं और उसी के अनुरूप अपनी दिनचर्या को विकसित करने का प्रयत्न करें। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

अनुष्ठान की उपलब्धियाँ

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

बेटियो, आत्मीय प्रज्ञा परिजनो! आज आपका अनुष्ठान पूर्ण हो रहा है। आज आपकी पूर्णाहुति है। पूर्णाहुति हो चुकी और थोड़ी देर में आपकी विदाई भी होने वाली है। आपने इसमें क्या पाया? इस उपासना से, इस अनुष्ठान से आपको क्या-क्या उपलब्धियाँ मिलीं? यदि आपने गहराई से विचार किया होगा व आत्ममंथन किया होगा, तो आपकी झोली में अनेकों उपलब्धियों के रूप में वह अनुदान और वरदान पड़े होंगे, जिसे आप नहीं समझ सके होंगे, कि इस वातावरण में किस तरीके से हम आपके साथ घुले रहे और आपके साथ हम छाए रहे। अगर आप यह समझते हैं कि आपने अकेले ने अनुष्ठान संपन्न किया है, तो ऐसा नहीं है। आप अकेले नहीं कर सकते हैं। इसमें हम जुड़े हुए हैं, गुरुजी आपके साथ में जुड़े हुए हैं, तब आप यह संपन्न कर पाए हैं।

बेटे! आप अपने घर में अनुष्ठान करते थे, उस अनुष्ठान में और यहाँ जो आपने नौ दिवसीय अनुष्ठान किया है, जो विशेष उपासना के लिए आपने विशेष संकल्प लिया है, आप उसको देखिए और अपने घर पर जब आप करते थे, उस पर आप विचार करेंगे, तो आपको यह मालूम पड़ेगा कि दोनों में जमीन-आसमान का अंतर है। बेटे! इतना अंतर है कि हम आपसे क्या कहें? यह इस भूमि का प्रभाव है।

इस भूमि पर विश्वामित्र ने तप किया है और दूसरा आपके युगऋषि, युग के विश्वामित्र हैं, उनने तप किया है। इस भूमि पर करोड़ों की संख्या में और अरबों की संख्या में जप और अनुष्ठान होते रहे हैं और होते रहेंगे।

बेटे! इस भूमि का प्रभाव है, इस वातावरण का प्रभाव है कि व्यक्ति न मालूम किन-किन चिंताओं से ग्रस्त और किन-किन समस्याओं से उलझा हुआ आता है और यहाँ शांति और संतोष पाता है।

आखिर क्यों? आप इसमें एक ही कारण पाएँगे कि इसके कण-कण में बेटे गुरुजी का प्राण, हमारा प्राण इसमें घुला है। हर कण में हमारा प्राण घुला हुआ है। जो प्रभाव है, वातावरण है, उसकी ही उपलब्धि के रूप में आपको मिलता है। आप जान नहीं पाए, तो इसमें कोई क्या करेगा। जान नहीं पाएँगे, तो भगवान भी साक्षात् आपके सामने आ जाए व आपकी अनुनय-विनय करे और आपको इतना अनुदान दे डाले कि आपकी झोली भर जाए, तब भी आप खाली-के-खाली रह जाएँगे।

भगवान के अंग बनें

मुझे एक किस्सा याद आ जाता है। एक ब्राह्मणी और ब्राह्मण था और एक उनका बच्चा था। मैं उपलब्धि की, अनुदान और वरदान की बात कह रही हूँ। उन्होंने भगवान शंकर की तपश्चर्या की। भगवान शंकर और पार्वती गुजर रहे थे। पार्वती जी ने कहा—देखो, ये कितने बड़े साधक हैं और इन्होंने कितना अनुष्ठान किया है। उनको वरदान दे देना चाहिए। शंकर जी ने एक बात कही। उन्होंने कहा कि वे इस लायक नहीं हुए हैं कि इनको वरदान-अनुदान दिया जाना चाहिए। क्यों? इन्होंने केवल हमारी शक्ल को देखा है और यह देखा है कि शंकर जी बेलपत्र और धतूरा खाते हैं, अत: इन्हें पूजो; लेकिन इन्होंने शंकर जी जैसा बनना नहीं चाहा है।

बेटे! आप गायत्री माता के भक्त तो हैं, लेकिन गायत्री माता के अंग नहीं बन पाए कि गायत्री माता हमसे क्या चाहती हैं? हमसे क्या अपेक्षा है? हमसे जो अपेक्षा है, इस लायक हम बने कि नहीं बने?

यदि आप बन गए, तो सही अर्थों में आप गायत्री माता के बेटे हैं। गुरुजी के आप शिष्य हैं

इक्कीसवीं सदी भाव-संवेदनाओं के उभरने-उभारने की अवधि है। हमें इस अवधि में अपेक्षित क्षेत्र को ही हरा-भरा बनाने में निष्ठावान माली की भूमिका निभानी चाहिए। यह विश्व-उद्यान इसी आधार पर हरा-भरा, फला-फूला एवं सुषमासंपन्न बन सकेगा। आश्चर्य नहीं कि वह स्वर्गलोक वाले नंदनवन की समता कर सके।

—*परमपूज्य गुरुदेव*

और माताजी के आप बेटे हैं। यदि आप ऐसा नहीं कर पाए, तो यह समझा जाएगा, आप तो बेचारे हैं। हैं तो हमारी संतान, लेकिन बेचारे हैं और बेचारे ही रह गए। आपके अंदर वह स्फुरणा, वह शक्ति, वह प्रेरणा नहीं आई, तो कैसे माना जाए कि आपके अंदर भक्ति आ गई।

बेटे! अभी मैं शंकर जी की बात सुना रही थी और कह रही थी कि पार्वती जी ने कहा कि नहीं, दे ही दीजिए। शंकर जी ने कहा—भाई दे देते हैं।

तो क्या सबसे आगे बुड्ढा ब्राह्मण आया? नहीं, ब्राह्मणी आई, उसने कहा कि भगवान हमको दीजिए वरदान।

शंकर जी ने कहा कि ले लो वरदान। क्या चाहिए? लौकिक चाहिए? पारलौकिक चाहिए? उसने कहा कि लौकिक चाहिए, पारलौकिक से हमें क्या मतलब? उन्होंने कहा कि माँगना है, तो वो चीज माँगिए, जिसमें कि आपका भी कल्याण हो और दूसरों का भी कल्याण हो।

उसने कहा कि दूसरों से हमें क्या फायदा? हमें तो अपने लिए चाहिए, हमको दीजिए। हमें क्या मतलब कि हमारा पड़ोसी दु:खी है, सुखी है या पीड़ा-पतन निवारण के लिए दोनों हाथों से हमें पुकार रहा है और यह कह रहा है कि देखिए हमारी तरफ देखिए। हम कितने कष्ट में हैं। आइए, जब आपको प्रेरणा मिली है, तो हमको शांति दीजिए। उन्होंने कहा कि नहीं, हमको कोई जरूरत नहीं। हमको तो अपनी जरूरत है।

शंकर जी बोले—क्या चाहिए? उसने कहा कि देखिए, अब हमारे मरने का वक्त आ गया। हमको अब एक ही चीज चाहिए। क्या चाहिए? खुदगर्जी, जिसमें खुद का लाभ होता हो। वह भले ही दिखावटी हो। कैसा दिखावटी?

उसने कहा कि मुझे तो रूप-यौवन चाहिए, तो आप रूप-यौवन ले लीजिए। उसे रूप-यौवन मिल गया। अब आई—दूसरे की बारी। बुड्ढे की बारी आई।

उन्होंने कहा कि आप भी एक वरदान माँग लीजिए। बुड्ढा बहुत बुरी तरह से गुस्से में तमतमा रहा था। उसने कहा कि इस बुढ़िया को क्या सूझी है कि रूप-यौवन माँग बैठी है। अरे कुछ और माँग लेती। शंकर जी ने कहा—भाई, तुम क्यों नाराज हो रह हो? तुम भी माँग लो। उसने कहा कि मैं यह माँगता हूँ कि बुढ़िया सुअरिया बन जाए। उन्होंने कहा कि सुअरिया बन जाएगी।

अभी जो एक बच्चा था, वह बहुत तिलमिला रहा था, रो रहा था। चूँकि माँ से ही बच्चा बड़ा होता है और माँ की छत्रछाया में बढ़ता है। पिता तो केवल साधन जुटाता है और माँ लालन-पालन करती है और संस्कार देती है। माँ बच्चे को सुसंस्कारी बनाती है।

जितने भी हमारे संत हुए हैं और ऋषि हुए हैं, उन्हें किसने पैदा किया? माँ ने बनाए और दूसरा जो संस्कार मिला, वह गुरु ने उनको ढाला। माँ ने पैदा किए, संस्कार दिया और गुरु ने वातावरण बनाया। उनमें प्रेरणा भरी, ऊँचा उठाया।

उन्होंने कहा— बच्चे, तू क्यों रोता है? मैं यों रोता हूँ कि मेरी मम्मी तो सुअरिया बन गई, अब मेरा लालन-पालन कैसे होगा? मुझे खाना कौन खिलाएगा? मुझे प्यार कौन देगा? मुझे सँभालेगा कौन? उन्होंने कहा—एक वरदान तू भी माँग ले। उसने कहा—मेरी माँ जैसी थी, वैसी ही आप बना दीजिए। उन्होंने जल छिड़क दिया और वह वैसी-की-वैसी बन गई। तीनों को वरदान भी मिला और तीनों खाली-के-खाली हाथ रह गए।

बेटे! आपने विचार किया क्या? आखिर ये खाली हाथ कैसे रह गए? खाली हाथ इसलिए रह गए कि उन्होंने केवल अपने स्वार्थ के लिए माँगा था, अपने लिए माँगा था। कहीं परमार्थ के लिए माँगा होता, लोक-मंगल के लिए माँगा होता, तो वे भी उसी श्रेणी में आ गए होते, जिस श्रेणी में भगीरथ आए हैं।

भगीरथ ने तपश्चर्या की थी न और उनको जो वरदान मिला, सारा-का-सारा उन्होंने लोक-मंगल में लगा दिया, तो आज भी हम भगीरथ की जय

बोलते हैं। विश्वामित्र की जय बोलते हैं। परशुराम की जय बोलते हैं। क्यों?

परशुराम ने तपश्चर्या की थी और जो कुछ भी पाया, वह सारे-का-सारा लोक-मंगल में लगा दिया और अपनी सारी जिंदगी को खपा दिया। कहते हैं कि उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों के सिर काटे थे। इसमें तो शक है कि ऋषि किसी का सिर नहीं काटता; लेकिन ऋषि एक धारा के प्रवाह को बदलता है।

ऋषि उस चाल को बदलता है, जिसमें भेड़ें चलती हैं। भेड़चाल में ऋषि सहयोग नहीं करता, ऋषि की चाल और ऋषि की दिशा अलग होती है। उसकी लाइन बिलकुल अलग होती है। जैसे समुद्र में मछली जाती है और सरसराती हुई अपना रास्ता बना लेती है। इसी तरीके से ऋषि अपना रास्ता बनाता है और सूरज और चाँद के तरीके से चमकता है। वह सारे संसार को एक दिशा देता है, रोशनी देता है और प्रकाश देता है। तपश्चर्या हो, तो इस श्रेणी की हो।

तपश्चर्या का लाभ

तपश्चर्या से लाभ मिलता है? हाँ बेटे, मिलता है। वही तो मैंने अभी आपसे निवेदन किया। आपको भी मिलेगा और मिल चुका है। आप अनुभव क्यों नहीं करते कि हमें मिल चुका है। आपने तो यही अनुभव किया कि रोना-रोना, सारी जिंदगी रोना-ही-रोना। लाओ-ही-लाओ। बीबी लाओ, बच्चे लाओ, पैसे लाओ। अरे! इसी के लिए जिंदगी है क्या? या इससे आगे भी है। बेटे! इसके आगे भी है।

इसके आगे वह जिंदगी है कि सारा संसार आपको दुआ देता रहेगा। आपको आशीर्वाद देता रहेगा और आपको अपने कलेजे से लगाएगा। हमारी औलाद, तो जाने हमारे लिए सेवा करेगी कि नहीं करेगी; लेकिन हम जानते हैं कि एक साधक की, एक ऋषि की और एक संत की औलाद जो होती है, वह कितना कर पाती है, यह हमारी आँखों से देखिए न आप। आप तो अपनी आँखों से देख रहे हैं। आप अपने चिंतन से विचार कर रहे हैं। आप हमारे चिंतन में घुसिए न, आप हमारी गहराई में घुसिए न।

बेटे! आपने अभी गुरुजी का केवल बाह्य स्वरूप देखा है। कहीं गुरुजी का आपने विराट स्वरूप देखा होता तो फिर मैं समझती हूँ कि आप में से कोई भी कामना ले करके नहीं आए होते। आपमें से एक भी यह शब्द नहीं निकालते कि हमारे तीन लड़कियाँ हैं, एक लड़का तो आप दे दीजिए। फिर आप यह कहते कि भगवान ने बहुत बड़ा आशीर्वाद दिया कि हमको बेटी दे दी। बेटा नहीं दिया है, यह भगवान ने बहुत बड़ा आशीर्वाद हमें दिया है।

ऋषि प्रचेता कौशांबी राज्य के कुलगुरु थे। राज्य के राजा ने उनसे प्रश्न किया—"गुरुवर! वह कौन है, जो सब कुछ होते हुए भी दरिद्र के समान है?"

ऋषि बोले—

"शक्तिमानप्यशक्तोऽसौ-धनवानपि निर्धनः।
श्रुतवानपि मूर्खश्च यो धर्मविमुखो नरः॥

जो मनुष्य धर्म से विमुख होता है, धर्म का पालन नहीं करता है, वह शक्तिवान होते हुए भी निर्बल है, धनवान होते हुए भी निर्धन है और वेद-शास्त्रों को पढ़ने के बाद भी मूर्ख के समान है।"

क्यों ? बेटा सारी जिंदगी की कमाई खा जाएगा और बुढ़ापे में वो ठोकर मारेगा कि चित गिर जाएँगे। नानी याद आ जाएगी, कि हमने जिसके लिए सारी जिंदगी कमाया था और जिसके लिए हमने सारी जिंदगी खपा डाली, यही हमारा भगवान था। इसको हमने भगवान समझा और असली भगवान को नंबर दो पर समझा और वह हमें लात मार करके भगा रहा है।

लोक-मंगल के लिए जिएँ

बेटे ! जो सही इनसान होता है, जो सही साधक होता है, वह लोक-मंगल के लिए होता है। अपने लिए नहीं होता है। हमने एक ही नारा लगाया और ये कहा है कि आप ब्राह्मणोचित जीवन जिएँ। आपको इसमें आनंद आएगा। ब्राह्मण सारे संसार को देता है, लेता नहीं है। वह देता है। क्या देता है ? वह ज्ञान देता है, वह सेवाएँ देता है। वह भावनाएँ देता है, वह निष्ठा देता है, वह श्रद्धा देता है। आप भी ब्राह्मण होकर के रहिए। आप अभी ब्राह्मण नहीं हुए हैं। कौन हुए हैं ?

अब मैं क्या कहूँ कि आप कौन हुए हैं ? मैं यह क्यों कहूँ ? मेरे तो आप बच्चे हैं। आप हमारे कुटुंबी हैं, तो आपकी बेइज्जती करने का हमारा मन नहीं है। हमारा मन तो यह है कि आप जिस जगह हैं, इससे ऊँचे तो उठिए जरा, आप ऊँचे उठ कर तो देखिए। आप भक्त की श्रेणी में तो आइए। भक्त की श्रेणी में नहीं आए, अभी तो बगला-भगत की श्रेणी में आए हैं। बगला-भगत मालूम है, कैसा होता है ? नदी किनारे पर बैठा रहता है और ध्यान लगाए रहता है। जहाँ मछली पर पड़ी नजर, उसे उसने चोंच में उठाया और गपक। बगला-भगत इसे कहते हैं।

भक्त उसे कहते हैं—जिसका ध्यान केवल अपनी उपासना पर और अपने आत्मकल्याण पर लगा रहता है और यह लगा रहता है कि हमारा आत्मशोधन किस तरीके से होगा ? किस तरीके से हम जिस निकृष्ट कोटि में हैं, उससे ऊँचे उठें ? भगवान हमको वह शक्ति दीजिए, चल तो हम अपने आप लेंगे; लेकिन बगैर आपकी शक्ति के हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं। आप हमें शक्ति दीजिए। आप हमको प्रेरणा दीजिए, फिर देखिए हम चलते हैं कि नहीं चलते हैं।

गुरुजी पहले एक गाने की लाइन गाया करते थे। एक बार मैंने कहा कि साहब ! इस गाने के बारे में आपको मालूम है, किसका है ? बोले हमें क्या मालूम किसका है ? होगा किसी का, हमें क्या मतलब ? हम तो हर गाने को अध्यात्म से जोड़ते हैं। उन्होंने कहा— मेरे पैरों में घुँघुरू बँधा दे, फिर मेरी चाल देख ले। मेरे पैरों में घुँघुरू बँधा, फिर देख मेरी चाल, कि मैं ठुमकता हूँ कि नहीं ठुमकता। भगवान मुझे शक्ति दे और फिर देख मेरी चाल की करामात।

गुरुदेव का विराट रूप देखिए

आपने देखा है न ? अभी नहीं देखा। गुरुजी का वो विराट रूप देखिए, जो काकभुशुंडि ने भगवान राम के पेट में जाकर देखा था। भगवान कृष्ण के मुँह में माँ यशोदा ने विराट रूप के दर्शन किए थे। जब अर्जुन को समझा रहे थे तब भगवान कृष्ण ने यह कहा कि तू अभी यह देख रहा है न कि मेरे सगे-संबंधी मर जाएँगे, तो इनको मर जाने दे। ये मरने लायक ही हैं।

इन कौरवों को परास्त होना ही चाहिए। वो मरने ही चाहिए। कौन से कौरव ? वो कौरव नहीं, जो इनसान के रूप में हैं, वरन जो विकृतियों के रूप में हैं। उन कौरवों को मरना ही चाहिए।

जो अंत:करण में विचर रहे हैं, उन कौरवों का तो हम अनुमान ही नहीं लगाते। वो कौरव तो

सौ थे और हमारे भीतर जो भरे पड़े हैं, अरे वो तो हजारों की तादात में, लाखों की तादात में हैं। तू कौरवों को मार, तो अर्जुन ने कहा—मैं मारूँगा। मुझमें शक्ति नहीं है।

उन्होंने कहा—जनखे खड़ा हो जा। उन्होंने एक ही शब्द कहा और उसकी शक्ति को ललकारा। अर्जुन ने कहा कि मुझमें वो शक्ति नहीं है कि मैं महाभारत के संग्राम में अकेला लड़ूँ।

भगवान कृष्ण ने कहा—तुझसे कौन कहता है कि तू अकेला है ? अकेला नहीं है, मैं जो तेरे साथ हूँ। तेरे रथ को चलाने वाला मैं हूँ। तू धनुष उठा, बाण उठा, लड़ना तो तुझे ही पड़ेगा, पर शक्ति हमारी तेरे साथ चलेगी। महाभारत में वह विजयी हो गया। कौन हो गया ? अर्जुन हो गया। जो कायर था और यह कहता था कि मुझसे नहीं लड़ा जाएगा। मैं नहीं लड़ सकता।

गुरुजी मैं क्या करूँ ? मेरी तो औरत बीमार है। मेरा बच्चा तो बे-लाइन चलता है और मुझमें सामर्थ्य नहीं है। अब बताइए कि मैं कैसे जा सकता हूँ ? घर से बाहर मैं कैसे शक्ल दिखा सकता हूँ ? बेटा ! जनसंपर्क के लिए जाओगे क्या ? नहीं गुरुजी ! हम नहीं जाएँगे। लोक-कल्याण का काम करोगे क्या ? नहीं। अपनी संकीर्णता को त्यागोगे क्या ? नहीं, अपनी संकीर्णता को तो हम नहीं त्यागेंगे गुरुजी। तो बेटा ! आप इस जीवन में कभी कुछ नहीं बन सकते और खाली हाथ ही रहेंगे। आप पैसा कमा लें, दंद-फंद से या चाहे जैसे कमा लें; लेकिन पैसा क्या साथ जाएगा ? पैसा साथ नहीं जाएगा।

वह पैसा आपका किसी अच्छे काम में लगे तो सार्थक है। जैसे गांधी जी और जमनालाल बजाज थे। गांधी जी की शक्ति थी और जमनालाल बजाज का साधन था। उनका साधन था और उनकी शक्ति—दोनों मिल गए, तभी तो इतना बड़ा महान कार्य हो सका।

अंधे और पंगे जिस समय मिल जाते हैं तो अंधे का पाँव काम करता है और पंगे की दिशा काम करती है। पंगे ने कहा कि यहाँ चल, इधर को लकड़ी चला, इधर को रास्ता है, इधर को मुड़, इधर को चल और अंधा उधर ही चलता रहा।

एक बार एक गणमान्य सेठ महामना मालवीय जी के पास प्रीतिभोज में सम्मिलित होने का निमंत्रण देने पहुँचे। महामना जी उनसे विनम्र स्वर में बोले—''सेठ जी! ये आपका प्रेम है कि आप स्वयं इस आमंत्रण को लेकर आए, परंतु जब तक मेरे देश के लाखों भाई-बहन भूखे हैं, तब तक मैं किस तरह बड़े-बड़े भोजों में सम्मिलित हो सकता हूँ ?''

मालवीय जी की बात सुनकर सेठ जी इतने द्रवित हुए कि उन्होंने प्रीतिभोज में व्यय होने वाला सारा धन गरीबों में दान कर दिया। ऐसे थे महामना मालवीय जी।

गुरु-शिष्य की वास्तव में अंधे और पंगे की जोड़ी है। जो श्रद्धा से जुड़ा रहता है, उसको अनेक रूपों में अनुदान मिलता रहा है और मिलता रहेगा। भक्तों की श्रेणी मैं आपको कहाँ तक गिनाऊँ ? उनको कहाँ तक गिनाऊँ, जिन्होंने तप भी किया है और वरदान भी पाया है। फिर सब स्वाहा हो गए। जिसमें रावण भी शामिल है और भस्मासुर भी शामिल है। इन्होंने तपश्चर्या करके कितने वरदान पाए थे और वे क्या-से-क्या बने और क्या-से-क्या

करके वे मिट गए, मिट गए? हाँ, मिटने में भी देर नहीं लगेगी। क्यों नहीं लगेगी?

जो कुछ किया है, वह नम्र बनने के लिए नहीं किया। वह लोक-मंगल के लिए नहीं किया, लोकोपकार के लिए नहीं किया। जो कुछ किया है, वह तो अपने अहंकार को बढ़ाने के लिए ही किया है, तो अहंकार बढ़ा लो बेटे, जब पोल खुल जाएगी, तो कहीं के भी नहीं रहोगे। इसलिए नम्र बनिए, उदार बनिए और यह संसाररूपी जो भगवान है, मानव के रूप में जो भगवान है—इसको आप पहचानिए, तो आप पाएँगे कि यह भगवान है।

भगवान का स्वरूप हैं आप

आप सब कौन बैठे हैं? हमारी निगाह से देखिए, तो आप सब भगवान के स्वरूप बैठे हैं; लेकिन आपने अपने भगवान को सुला रखा है। अभी जगाया नहीं है। कुंभकरण की नींद आप खुद सो रहे हैं और भगवान की दुर्गति कर रहे हैं। कुंभकरण की नींद यदि आप न सोएँ और जाग जाएँ, तो फिर देखिए कि आपका भगवान कैसे-कैसे आपको सहयोग देता है, मीरा के तरीके से। मीरा के साथ में भगवान कृष्ण नाचते थे।

मीरा के लिए जहर का प्याला गया था और कहते हैं कि वह अमृत का प्याला हो गया। फिर जहर किसने पिया? कृष्ण ने। कृष्ण पिएगा जहर? हाँ, कृष्ण ही पिएगा जहर। और मीरा क्या पिएगी? मीरा, मीरा अमृत पिएगी। क्यों? क्योंकि उसकी श्रद्धा जो थी न भगवान के प्रति।

भगवान के प्रति जिस दिन उसने समर्पण किया था, उस दिन से लेकर और जब तक उसका अंत हुआ तब उसकी जबान पर एक ही नाम था—कृष्ण-कृष्ण। कृष्ण का गुणगान करने के लिए मीरा दर-दर भटकती रही और कहाँ-से-कहाँ मीरा घूमती रही।

बेटे! कबीर, रैदास, सूरदास सबकी ऐसी ही कहानी है। सूरदास की तो लकड़ी लेकर के आगे-आगे भगवान चलते थे। आपकी लकड़ी लेकर चली हैं, गायत्री माता कभी? क्यों नहीं चलीं? इसलिए नहीं चलीं कि जितनी श्रद्धा होनी चाहिए, उस श्रद्धा का अभाव पाया गया। आप तो डाल-डाल और पात-पात पर घूमते रहे?

आज हनुमान जी के पास चलिए, शायद कुछ हनुमान जी से ही मिल जाए। कल शंकर जी के द्वारे चलिए, हो सकता है शंकर जी से ही कुछ मिल जाए। फिर संतोषी माता से ही कुछ मिल जाए, चंडी माता से ही कुछ मिल जाए। चलिए सबके दर पर पल्ला फैलाइए अपना-अपना, शायद इससे मिल जाए, शायद उससे कुछ मिल जाए।

बुरा मत मानिएगा बेटे! यह क्या हुआ? यह हुई वेश्यावृत्ति। ये वेश्यावृत्ति होती है कि यहाँ से भी कुछ मिल जाए, वहाँ से भी कुछ मिल जाए, इससे भी कुछ मिले, उससे भी मिले। हर किसी से कुछ पाने की इच्छा को छोड़िए। अपनी श्रद्धा को बढ़ाइए। यह संकीर्णता कैसे आई? यह खुदगर्जी कैसे आई?

एक सती का उदाहरण देती हूँ। सती का कौन होता है? सती का वह होता है कि जिस दिन से अपने पति के घर में आती है। वह हर परिस्थिति में उसका साथ देती हुई चली जाती है। वह कहती है कि मैं तो समर्पित हूँ न इनके लिए। इनके परिवार के लिए जो भी परिस्थितियाँ हैं, उन परिस्थितियों से या तो मैं तालमेल बैठाऊँगी, नहीं तो योगी होकर के चलूँगी।

बेटे! वह योगी होकर के जीती है और जब न करे, भगवान कुछ आगा-पीछा हो जाए, तो सारी दौलत की स्वामिनी हो जाती है पत्नी। और वेश्या?

वेश्या कैसी हो जाएगी? सारी जिंदगी जिसकी सेवा की थी, ठोकर मार देगी तुमको।

क्यों ठोकर मार देगी? क्योंकि पत्नी में और वेश्या में अंतर है। पत्नी की भावना है, उसकी श्रद्धा है, उसकी निष्ठा है अपने पति के प्रति, वह उसे भगवान का स्वरूप मानती है। वेश्या वह केवल पैसा माँगती है। अंतर है कि नहीं, दोनों में अंतर है।

इसी तरीके से भगवान और भक्त में इतनी ही दूरी है। जब जीवात्मा परमात्मा से मिल जाती है, तो सारे संसार का स्वामी वह जीवात्मा हो जाती है और भगवान उसके साथ-साथ चलता है। इसका उदाहरण हैं—समर्थ गुरु रामदास। उन्होंने जो अनुदान और वरदान शिवाजी को दिया था और किसी को क्यों नहीं दिया?

इसलिए नहीं दिया कि केवल उसके ही अंदर वह निष्ठा और श्रद्धा पाई गई; जबकि उन्होंने यह कहा कि इसकी परीक्षा लेनी चाहिए कि यह सफल है कि असफल है। बनावटी है कि वास्तविकता है। जब वास्तविकता देख ली गई, तो अक्षय कटारी दे दी गई। ले जा बेटा, इसी से विजयी होगा।

विवेकानंद को वह शक्ति मिल गई, तो सारे संसार में उन्होंने अकेले ही रामकृष्ण मिशन को फैला दिया। वे खुद भी चमक गए, उनके गुरु भी चमक गए। कैसे? उनकी निष्ठा थी, श्रद्धा थी, उससे सब कुछ पा लिया।

[क्रमशः अगले अंक में समापन]

ऋषि सुदीर्घ शिष्यों को संबोधित कर रहे थे। संबोधन का विषय अपरिग्रह था। जिज्ञासावश एक शिष्य ने पूछा—"गुरुवर! सब छोड़ने वाले को परमात्मा सब पाने का अधिकार क्यों देते हैं?"

ऋषि सुदीर्घ ने उत्तर दिया—"वत्स! यह सृष्टि इसी परंपरा पर आधारित है। नदी तुम्हें जल देती है, लेती कुछ नहीं। सूर्य तुम्हें प्रकाश देता है, लेता कुछ नहीं। वायु तुम्हें प्राण देती है, पर लेती कुछ नहीं। यहाँ अपना कुछ न समझकर सब परमात्मा को समर्पित कर देने वाला सर्वस्व का अधिकारी बनता है और इस पर अनुचित आधिपत्य जमाने वाला व्यर्थ के प्रपंचों में उलझा रहता है। अपरिग्रह का अर्थ मात्र अनासक्ति ही नहीं, वरन प्रभु के प्रति सच्चा समर्पण भी है।"

आँखों की ज्योति को अखंड रखेगा विश्वविद्यालय

पूज्य गुरुदेव हेतु युगद्रष्टा का संबोधन उनकी महिमा को और भी अधिक उजागर करता है। सृष्टि के क्रियाकलापों से न केवल परिचित होने, वरन उसमें आमूलचूल परिवर्तन कर सकने की सामर्थ्य रखने वाली परमात्मसत्ता के रूप में पूज्यवर ने अपनी दिव्यदृष्टि से वर्तमान समय की विभीषिका को पहचाना व तत्क्षण ही मानवता को उससे यथाशीघ्र उबरने का मार्ग सुझाया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय उन्हीं युगद्रष्टा की मूर्त संकल्पना है, जो अपने द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न प्रकल्पों से समाज की दशा में सुधार लाने के साथ ही उसके भविष्य को सँवारने हेतु सही दिशा भी दिखला रहा है। चिकित्सा क्षेत्र में एक नवीन प्रकल्प के आरंभ के क्रम में विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में नेत्र चिकित्सा केंद्र का उद्घाटन किया गया।

यह केंद्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं अखंड ज्योति नेत्र चिकित्सालय मस्तीचक बिहार के सम्मिलित प्रयासों द्वारा संचालित किया जाएगा। इस केंद्र में कोई भी व्यक्ति नेत्र रोग विशेषज्ञों द्वारा आँखों का बेहतर और सफल इलाज पा सकते हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय स्थित इस केंद्र का उद्घाटन श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी एवं प्रतिकुलपति जी द्वारा किया गया।

विदित हो अखंड ज्योति नेत्र चिकित्सालय युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा संचालित और स्वामित्व में है। सालाना 70,000 से अधिक सर्जरी करना व जिनमें से 80 प्रतिशत जरूरतमंदों के लिए मुफ्त चिकित्सा की सुविधा भी शामिल है।

देश में बहुत से लोग विभिन्न नेत्र विकारों से ग्रसित हैं। अधिकतर ऐसे रोगी सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, जिन्हें न तो इस संबंध में कोई जानकारी होती है और न ही समय रहते आवश्यक उपचार की समुचित सुविधाएँ हीं।

नेत्र संबंधी रोगों का उपचार अनेक चिकित्सालय कर रहे हैं, किंतु पूज्य गुरुदेव के अनन्य शिष्य द्वारा अखंड ज्योति नेत्र चिकित्सालय के माध्यम से पिछड़े इलाकों में गरीबों को यथासंभव राहत सेवा प्रदान करने के शुभ संकल्प का ही यह परिणाम है कि यह समूचे बिहार राज्य के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश की जनता को भी नेत्र संबंधी स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान किए जाने में अग्रणी है।

अखंड ज्योति नेत्र चिकित्सालय मस्तीचक द्वारा चालित टेली-ऑप्थेलोमोलॉजी की अत्याधुनिक चिकित्सा सेवाओं के माध्यम से नेत्र रोग से ग्रसित रोगी को अपने घर के निकट से ही दूर बैठे नेत्र रोग विशेषज्ञ से संपर्क साध पाना संभव बन पड़ता है और इससे रोग की पहचान भी शीघ्र ही हो जाती है तथा समय पर रोगी का इलाज भी आसानी से हो जाता है।

अखंड ज्योति नेत्र चिकित्सालय मस्तीचक सुदूर ग्रामीणों को अपने मस्तीचक स्थित सेंटर ऑफ एक्सीलेंस से टेली-ऑप्थेलोमोलॉजी की अत्याधुनिक चिकित्सा सेवाओं से जोड़ने की शृंखला को शुरू कर रहा है। जिसकी शुरुआत देव संस्कृति

विश्वविद्यालय स्थित नेत्र चिकित्सा के इस नए केंद्र से की जा रही है। इस चिकित्सा प्रकल्प से अधिक-से-अधिक लोग लाभान्वित हों, यही इसका उद्देश्य है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में फिनलैंड से अतिथियों के आगमन के क्रम में डॉ० ऑस्करी ऐरोनन (प्रमुख, एशियाई कार्यक्रम, सीएमआई) व जैको ऑस्केनन (वरिष्ठ सलाहकार, सीएमआई) का आगमन हुआ। आगमन के पश्चात उन्होंने माननीय प्रतिकुलपति जी से भेंट की और तत्पश्चात विश्वविद्यालय परिसर स्थित एशिया के प्रथम बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र व दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान का भ्रमण किया और उनमें चल रही गतिविधियों की सराहना भी की।

फिनलैंड से आए इस दल के आगमन पर एक स्वागत कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जहाँ माननीय प्रतिकुलपति महोदय जी द्वारा उन्हें विश्वविद्यालय का स्मृतिचिह्न भेंटस्वरूप दिया गया। कार्यक्रम की शृंखला में मुख्य अतिथि ने विश्व शांति के हित में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में चलाई जा रही गतिविधियों तथा दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान की सराहना भी की।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में लिथुआनियाई राजदूत प्रोफेसर डिआना का भी आगमन हुआ। अपने आगमन पर उन्होंने माननीय प्रतिकुलपति जी से भेंट की। अपने प्रवास के दौरान उन्होंने विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण किया व विश्वविद्यालय में चल रही गतिविधियों की सराहना की। उनके आगमन पर एक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया। कार्यक्रम का मुख्य भाव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जन-जन तक पहुँचाना रहा।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उत्तर प्रदेश के सिकंदराबाद से विधायक श्री लक्ष्मीराज सिंह जी का भी आगमन हुआ। अपने आगमन पर माननीय विधायक जी ने माननीय प्रतिकुलपति महोदय जी से भेंट की। भेंटवार्त्ता के दौरान कई विषयों पर चर्चा हुई। माननीय विधायक जी ने अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा संचालित गतिविधियों की खूब सराहना की। ❑

पौधे ने बहती नदी को देखा तो समीप खड़े वृक्ष से प्रश्न किया—"दादा! ये जल इतनी तेजी से कहाँ को बहा जा रहा है?" वृक्ष ने उत्तर दिया—"वत्स! ये धारा सागर से मिलने को व्याकुल है, इसकी सारी गति उसी दिशा में है।" पौधे ने पुनः पूछा—"पर्वत जैसी उच्च स्थिति को छोड़कर इतनी दूर चलते जाना कहाँ की समझदारी है?" वृक्ष बोला—"पुत्र! प्रश्न समझदारी का नहीं, समर्पण का है। बिना सागर में विलय हुए इस नदी का जीवन निरर्थक है। जीवन का आनंद मिलन में ही है, एकाकी पड़े रहने वाले तो कष्ट ही पाते हैं।" वृक्ष की बात की सत्यता मनुष्य जीवन पर भी लागू होती है। बिना परमात्मा से मिले, उस दिव्य चेतना से एकाकार हुए—इस मनुष्य जीवन के होने या न होने का क्या अर्थ है?

नवयुग का नेतृत्व करेगी विचार क्रांति

विचार क्रांति युग की आवश्यकता, समय की पुकार है। इस क्रांति के पीछे युग-परिवर्तन जैसा सार्वभौमिक महान लक्ष्य जुड़ा है। इतिहास में घटित अन्य सभी क्रांतियों का उद्देश्य कभी इतना व्यापक नहीं रहा है, जितना कि विचार क्रांति का है। इस क्रांति का संबंध दुनिया के हर व्यक्ति के मन-मस्तिष्क और जीवन से है।

इस युग की समस्त समस्याओं का केंद्र विकृत चिंतन, दूषित विचार ही है। आसुरी वृत्तियों ने मानवीय मस्तिष्क को ही अपना आश्रयस्थल बना रखा है और मनुष्य की चिंतन, चेतना और संवेदना को अंधकार से ढककर दिशाहीन बना दिया है। सर्वत्र मानव समाज की यही स्थिति है।

इससे उबरने का एकमात्र उपाय है—विकृत चिंतन की दिशा को पलट देना। मानवीय मस्तिष्क को दूषित विचारों की दलदल से बाहर लाकर सच्चिंतन-सद्विचारों से भर देना। विचारों-से-विचारों की काट कर देना। बुरे विचारों के स्थान पर अच्छे—श्रेष्ठ विचारों के बीजारोपण का अभियान, यही विचार क्रांति है।

उक्त बातें परमपूज्य गुरुदेव की विचार क्रांति के महत्त्व और विशिष्टता को समझने के लिए हैं। यह विचार क्रांति अन्यों से अलग व समूचे युग के परिवर्तन और सृजन का प्रतिनिधित्व करती है। वस्तुत: क्रांति का अर्थ ही है—तीव्र परिवर्तन और नूतन की प्रतिष्ठापना।

क्रांति का तात्पर्य है वर्तमान को पलटकर नए की स्थापना, पूर्ण परिवर्तन। विकास की गति धीरे-धीरे परिवर्तन लाती है; जबकि क्रांति मौलिक एवं तीव्र गति से आमूलचूल परिवर्तन को जन्म देती है। किसी भी क्षेत्र में भारी परिवर्तन उत्पन्न कर देती है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार क्रेन ब्रिन्टन ने 'दि एनाटॉमी ऑफ रिवोल्यूशन' में विश्व की सभी प्रसिद्ध क्रांतियों का उल्लेख किया है। इन सभी क्रांतियों का ध्येय संबंधित क्षेत्र में संपूर्ण और तीव्र परिवर्तन ही रहा है। विचार क्रांति का उद्देश्य भी पूर्ण परिवर्तन है, उलटे को उलटकर सीधा करना है।

गुरुदेव की विचार क्रांति के अद्वितीय और व्यापक स्वरूप को समझने से पूर्व इस तथ्य को समझ लेना आवश्यक है कि प्रत्येक क्रांति के मूल में कोई-न-कोई विचारधारा ही कार्य करती है। मानवीय मस्तिष्क के भीतर ही सभी क्रांतियों के प्रथम स्वर गूँजे हैं। सोच, चिंतन, विचार से ही क्रांति का बीज अंकुरित होता है।

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि जितनी भी क्रांतियाँ घटित हुई हैं, इन सबके मूल में एक विचारधारा अवश्य रही है। इस तथ्य के साथ जुड़ी हुई एक बात यह भी है कि जो विचार जिस धरातल से उत्पन्न होता है, उसका प्रभाव भी उसी के अनुरूप कम या ज्यादा दिखाई देता है।

किसी भी क्रांति की सफलता, असफलता अथवा व्यापकता का आधार वह धरातल ही होता है, जिससे उस क्रांति के विचार ने जन्म लिया होता है। किसी विचार का धरातल काल्पनिक है, किसी का बौद्धिक तो किसी का अनुभूतिजन्य और कुछ तो मानवीय चेतना के अलौकिक क्षेत्र से प्रस्फुटित हुए होते हैं।

विचारों के स्रोतों के आधार पर ही क्रांतियों का स्वरूप एवं प्रभाव निर्धारित होता है। जैसे काल्पनिक और बौद्धिक विचारों से उत्पन्न क्रांतियों ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारी परिवर्तन को जन्म दिया है। वैज्ञानिक युग के सृजन में बौद्धिक एवं औद्योगिक क्रांति की ही मुख्य भूमिका रही है, परंतु यह मनुष्य जीवन के सर्वांगपूर्ण पक्षों को स्वयं में समाहित नहीं कर पाती।

मनुष्य की धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक आस्थाओं एवं विश्वास का ऐसी क्रांतियों में कोई विशेष स्थान नहीं है। ऐसे ही अनेक क्रांतियों की एकांगीकता एवं उनके सीमित स्वरूप व प्रभाव को उनको उत्पन्न करने वाले विचारों के धरातल के मापदंडों से परखा जा सकता है।

विचार क्रांति न तो काल्पनिक विचार है और न बौद्धिक या दार्शनिक, अपितु यह पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है। आत्मा के तल से प्रस्फुटित विचार, मंत्र की भाँति देश-काल की सीमा से परे सार्वभौमिक एवं सर्वांगपूर्ण होता है। वैदिक-औपनिषदिक विचार इसी आध्यात्मिक धरातल से उत्पन्न विचार है।

परमपूज्य गुरुदेव ने भी युगऋषि के रूप में अपनी विचार क्रांति का धरातल अध्यात्म जगत् को बनाया है। उन्होंने अपना परिचय इसी रूप में प्रस्तुत किया है कि उनका व्यक्तित्व उनके विचारों में सन्निहित है। उनके विचार उच्चस्तरीय आध्यात्मिक संवेदना के स्तर पर बीजमंत्र की भाँति प्रकट हुए हैं। अतः उनकी इस विचार क्रांति के विचारों की तुलना अन्य किसी क्रांति को जन्म देने वाले विचारों से नहीं हो सकती।

भारतभूमि पर किसी भी युग में अध्यात्मप्रसूत विचारों की कमी नहीं रही है। इतिहास के हर कालखंड पर आध्यात्मिक चेतना के धरातल से उत्पन्न विचारों का प्रकाश बिखरा पड़ा है तथापि पूज्य गुरुदेव के विचारों की मौलिकता सिर्फ आध्यात्मिक धरातल से प्रकट होना मात्र नहीं है, बल्कि उन विचारों में अन्य सभी निम्न धरातल से उत्पन्न विचारों का भी सार्थक समन्वय है।

विगत समय की सभी क्रांतिकारी विचारधाराओं के कल्याणकारी एवं सार तत्त्व को विचार क्रांति में यथास्थिति सम्मिलित किया गया है। यही विशेषता इस क्रांति को युग की महान और समग्र क्रांति का स्वरूप प्रदान करती है।

एक सच्चे युगद्रष्टा के रूप में पूज्य गुरुदेव ने विचार क्रांति के माध्यम से इक्कीसवीं सदी में मौजूद विश्व मानव समाज के समक्ष यह उद्‌घोष किया कि पिछले युगों की शक्ति धर्म, अर्थ, विज्ञान, शस्त्र आदि भले ही रही हो, परंतु इस युग की शक्ति विचार है। वर्तमान का युग विचार युद्ध का युग है। जो विचार जितने प्रबल और शक्तिशाली होंगे, वे ही अपने अनुकूल परिवर्तन उत्पन्न कर सकेंगे।

आज की विषम परिस्थितियों का, समस्याओं का मूल कारण विकृत विचारपद्धति ही है; जिसका एकमात्र समाधान सुसंस्कृत विचारपद्धति के द्वारा ही संभव है। विचार क्रांति का यही प्रयोजन है कि लोगों की मान्यताओं और आस्थाओं में परिवर्तन कर उनमें कल्याणकारी सद्‌विचारों का बीजारोपण किया जा सके। विचार एवं विचारधाराओं में हीनता, निकृष्टता और संकीर्णता के आ जाने से ही व्यक्ति और समाज में निरंतर दुष्प्रवृत्तियाँ, दुश्चरित्र और अन्य संकट बढ़ते चले जा रहे हैं। इस स्थिति से उबरने के लिए एकमात्र समाधान का मार्ग विचार क्रांति ही है।

विचार क्रांति की समस्त प्रक्रिया आध्यात्मिक है। मानव जीवन के सभी आयामों को परिष्कृत कर विकसित व उत्कृष्ट बनाने वाले विचारों का इसमें समन्वय व सामंजस्य है। गुरुदेव के अनुसार क्रिया, चिंतन व संवेदना—ये तीनों जीवन के अनिवार्य पक्ष हैं, परंतु इनको पोषित करने वाली वर्तमान की विचारधाराएँ एकदूसरे के विपरीत

कार्य करती दिखाई देती हैं। मानवीय कल्याण के लिए इन तीनों धाराओं में पारस्परिक सामंजस्य अत्यंत आवश्यक है।

विज्ञान, दर्शन व धर्म की विचारणाएँ क्रमशः जीवन के उक्त तीनों पक्षों का स्वतंत्र रूप से प्रतिनिधित्व करती हैं और कई बार एकदूसरे के विरुद्ध खड़ी दिखाई देती हैं। इस विरोधाभास ने ही बहुत सारी समस्याएँ और संकट खड़े किए हुए हैं। विचार क्रांति में इन सभी विचारों का यथास्थान महत्त्व है। यहाँ विशेष उल्लेख किसी का नहीं किया गया है; क्योंकि सभी का मनुष्य जीवन के किसी-न-किसी पहलू से गहरा संबंध है। विचार क्रांति का विरोध केवल उन विचारों एवं मान्यताओं से है, जो मानव कल्याण के मार्ग में अवरोधक हैं।

मानवीय सभ्यता, संस्कृति, सामाजिक व राजनीतिक विकास के संदर्भ में प्राचीनकाल से लेकर अब तक अनेकों विचारधाराएँ प्रचलित रही हैं। सभी ने अपने समय में अलग-अलग दृष्टिकोण से क्रांति उत्पन्न कर मनुष्य जीवन के विकास एवं कल्याण को समझने की चेष्टा भी की है। भारतभूमि का तात्त्विक एवं आध्यात्मिक ज्ञान, काव्य एवं साहित्यसृजन की धाराएँ, कला-सौंदर्य आदि सांस्कृतिक पहलुओं के मूल्य तथा इन सभी क्षेत्रों से विकसित ज्ञान-विज्ञान का स्वरूप हमारे समक्ष मौजूद है।

डार्विन, मार्क्स और फ्रायड का प्रभाव भी हम देख रहे हैं। यह भी मानते हैं कि इन सभी ने समूचे विश्व समाज को प्रभावित किया है, परंतु इनमें कुछ-न-कुछ कमी अवश्य रही है जिसके कारण ये लंबे समय तक व्यक्ति व समाज के व्यावहारिक जीवन में अपनी उपयोगिता एवं सार्थकता को नहीं बनाए रख सके हैं।

इन सभी विचारधाराओं-सिद्धांतों की शक्ति मिलकर भी वर्तमान युग की जटिलताओं, संघर्षों, प्रतिकूलताओं, समस्याओं का समाधान करने में निरर्थक साबित हो रही है। ऐसे में एक समग्र, समन्वयकारी एवं सर्वांगपूर्ण विचारधारा ही इस युग का नेतृत्व कर सकती है और वह विचारधारा विचारक्रांति के रूप में गुरुदेव ने समूचे विश्व-समाज को उपहार में दी है।

विचार क्रांति के कलेवर में पूज्य गुरुदेव की अंतरात्मा के स्वर गुँजायमान हैं, उनकी प्रखर चिंतन चेतना का प्रकाश तीन हजार से अधिक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकीर्ण हो रहा है, उनकी सृजनशीलता ने विश्व के महानतम विराट संगठन 'गायत्री परिवार' को बनाकर खड़ा कर दिया है। सच्चिंतन, सत्कर्म और सत्प्रवृत्तियों को धारण कर समाज में चहुँओर विचार क्रांति के बीजों को फैलाते लाखों-करोड़ों लोग स्वयं ही इस महाक्रांति का प्रत्यक्ष परिचय दे देते हैं।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः

—वै०द० 1/1/2

अर्थात जिससे जीवन में अभ्युदय प्राप्त हो और जो श्रेय पथ पर ले चले, वही धर्म है।

आने वाली पीढ़ियाँ जब विचार क्रांति के सूत्रपात और इसकी सार्थकता का मापन करेंगी तो निश्चित ही उन्हें पूज्य गुरुदेव की इस युग परिवर्तनकारी क्रांति के समक्ष नतमस्तक होना पड़ेगा। हम-आप को भी वर्तमान में इसकी महत्ता और प्रकाश को फैलाने वाली गतिविधियों में तीव्रता उत्पन्न कर देने की आवश्यकता है।

यह स्मरण रहे कि विचार क्रांति का मूलकेंद्र पूज्य गुरुदेव की आत्मा है। इस अभियान की मूल शक्ति अध्यात्म है और विस्तार के केंद्र सभी आत्मीय परिजन। परिजनों के माध्यम से ही विचार क्रांति के जीवन-सूत्र समस्त विश्व के प्रत्येक मन-मस्तिष्क तक पहुँच सकेंगे और तभी इस युगक्रांति का लक्ष्य भी पूरा होगा। ❑

संत कबीर के प्रति

ओ यती, जतन से तुम ही ओढ़ सके अपनी
निर्दोष जिंदगी की, अनमैली चादर को।
यह सिर्फ तुम्हारे मुख से ही घोषणा सुनी-
''लो ज्यों-की-त्यौं धर चले चदरिया हम घर को॥''

अटपटे बोल में घोल गए ऐसे रहस्य
विद्वानों के बूते लगते हैं, अर्थ नहीं।
तुम कैसे अनपढ़ थे सुलझाकर चले गए-
हम 'उलटबासियाँ' समझ सकें, सामर्थ्य नहीं॥

तुम 'ढाई आखर पढ़े प्रेम के' थे केवल-
फिर भी 'श्रुतियों का सत्य' तुम्हारी वाणी में।
तुम 'कागद देखी बात' नहीं बोले तपसी-
है आखों देखा दृश्य गिरा कल्याणी में॥

''तुम लिए लुकाठी घर से बाहर निकल पड़े''
देते जग को आवाज, उठाकर हाथ चले।
कबिरा तो खड़ा बजार तमाशा देख रहा-
''जो भी घर अपना फूँके, मेरे साथ चले॥''

तुम-सा तो फक्कड़, अक्खड़ कोई मिला नहीं-
जो आगे बढ़कर ऐसा शाहंशाह बनें।
चिंता की चादर फेंक, चाह का मोह त्याग-
'मनुआँ' इकतारे पर गा, बे-परवाह बनें॥

—लाखनसिंह भदौरिया 'सौमित्र'
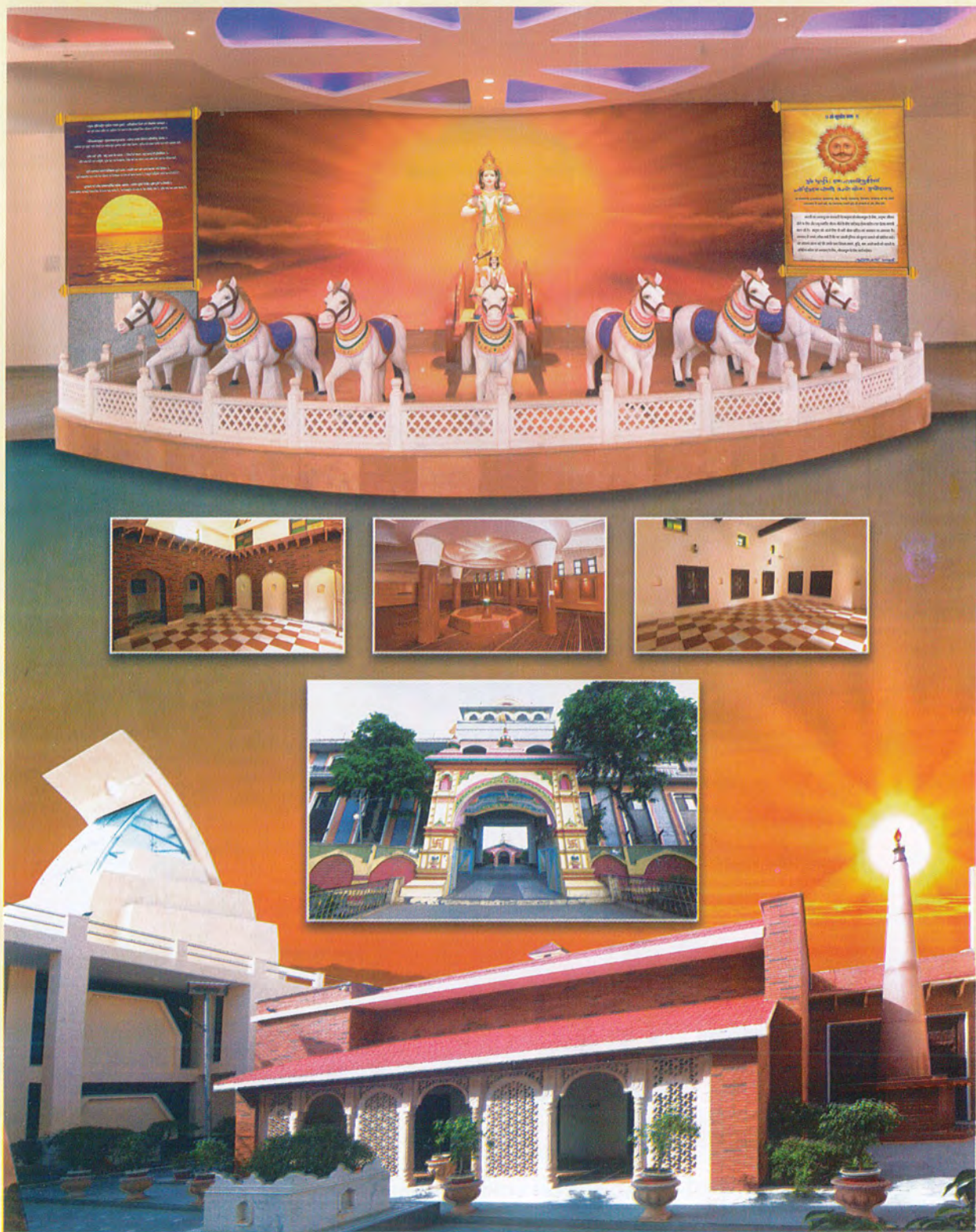
परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य की जन्मभूमि आँवलखेड़ा(आगरा)
में नवनिर्मित सूर्य मंदिर एवं नवीकृत गायत्री शक्तिपीठ की झलकियाँ

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-04-2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

108 कुंडीय गायत्री महायज्ञ एवं संस्कार महोत्सव घेगाँव, खरगोन (मध्यप्रदेश) में सफलतापूर्वक संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल - 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org